वर्ष–९ जनवरी–१९९० अंक–१

स्वामी विवेकानन्द परिव्रजन अंक

श्रीमत स्वामी निखिलेश्वरानन्दजी महाराज
सम्पादक, रामकृष्ण ज्योति
रामकृष्ण आश्रम, राजकोट

रामकृष्ण मिशन, जयप्रकाश नगर, छपरा–८४१ ३०१ (बिहार)

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

५१. श्री बी० भी० नागोरी—कलकत्ता (पं० बंगाल)
५२. श्री पवन कुमार वर्मा – समस्तीपुर (बिहार)
५३. श्री चिनुभाई भलाभाई पटेल —खेड़ा (गुजरात)
५४. श्री एस० सी० डाबरीवाला—कलकत्ता (प० बं०)
५५. श्री गोपाल कृष्ण दत्ता जयपुर (राजस्थान)
५६. श्री बृजेश चन्द्र बाजपेयी - जयपुर (राजस्थान)
५७. श्री बनवारी लाल सर्राफ—कलकत्ता (प बं०)
५८. श्रीमती गौरी चट्टोपाध्यायएलेन गंज, इलाहाबाद
५९. श्री वसन्त लाल जैन —कैथल (हरियाणा)
६०. डॉ० श्यामसुन्दर बोस—दूधपुरा बाजार (समस्तीपुर)
६१. श्री केशव दत्त वशिष्ठ —हिसार (हरियाणा)
६२. श्री के० सी० बागरी—कलकत्ता (प० बंगाल)
६३. मधु खेतान—कलकत्ता (प० बंगाल)
६४. प्रधान अध्यापिका —डोरांडा गर्ल्स हाई स्कूल, राँची
६५. रामकृष्ण मिशन स्टूडेन्ट्स होम—मद्रास
६६. श्री विमयशंकर सिन्हा—दाऊदपुर, छपरा
६७. रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम—इलाहाबाद
६८. श्रीमती मीरा मित्रा—इलाहाबाद
६९. स्वामी शान्तिनाथानन्द—रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद
७०. श्रीमती उषा श्रीकांत रेगे—दादर, बम्बई
७१. कुमारी इन्दु जोशी - उत्तरकाशी (उ० प्र०)
७२. श्री के० अनूप—रोइंग (अरुणाचल प्रदेश)
७३. गंगा सिंह महाविद्यालय—छपरा (बिहार)
७४. डॉ० उषा वर्मा छपरा (बिहार)
७५. श्री विजय कु०प्रभाकर राव शंखपाल (महाराष्ट्र)
७६. श्री विजय कुमार सिंह, झुमरीतिलैया (बिहार)
७७. श्री रघुनन्दन सेठी, कोटा, (राजस्थान)
७८. श्री भृगुनाथ प्रधान, जमशेदपुर (बिहार)
७९. डॉ० अमरेन्द्र कुमार सिंह, छपरा (बिहार)
८०. श्री रविशंकर पारीक ललित, जयपुर (राजस्थान)
८१. श्री सनत कुमार दुबे – सिवनी मालवा (म०प्र०)
८२. डॉ. आशीष कु. बनर्जी-रामकृष्ण मिशन, वाराणसी

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्री रामकृष्ण ने कहा है		१
२. दो गीत	सारदा तनय, पूनमचन्द तोमर	२
३. एक दस्तक : आपके दरवाजे	(सम्पादकीय सम्बोधन)	३
४. स्वामी विवेकानन्द : ~~बिहार से~~ बिहार से बिहार तक	—डॉ० केदारनाथ लाभ	६
५. वाराणसी में स्वामी विवेकानन्द		१२
६ अल्मोड़ा में स्वामी विवेकानन्द	डॉ० उषा वर्मा	१९
७. देहरादून में स्वामी विवेकानन्द		२५
८ कश्मीर में स्वामी विवेकानन्द	प्रो० चमनलाल सप्रू	२७
९. स्वामी विवेकानन्द और मध्यप्रदेश	स्वामी आत्मानन्द	३२
१० विवेकानन्द नाम राजस्थान की देन	डॉ० ओंकार सक्सेना	४१
११. गाजीपुर में स्वामी विवेकानन्द	स्वामी ब्रह्मेशानन्द	४५

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष — ९ जनवरी—१९९० अंक — १

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविच लविमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	३०० रु०
वार्षिक	२५ रु०
रजिस्टर्ड डाक से	४० रु०
एक प्रति	३ रु०

रचनाएं एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

कितनी भी चेष्टा करो, भगवान की कृपा के बिना कुछ नहीं होता। उनकी कृपा के बिना उनके दर्शन नहीं मिलते। परन्तु उनकी कृपा भी सहज में नहीं होती। उसके लिए अहंकार का सम्पूर्ण त्याग कर देना पड़ता है। 'मैं कर्त्ता हूँ' इस बोध के रहते उनके दर्शन नहीं हो सकते। भण्डार-घर में अगर कोई हो और उस समय घर के मालिक से अगर कोई कहे कि आप भण्डार से अमुक चीज निकाल दीजिए, तो मालिक यही कहता है कि वहाँ तो एक आदमी है न, फिर मेरे जाने की क्या जरूरत ! जो खुद ही कर्ता बन बैठा है, उसके हृदय में भगवान आसानी से नहीं आते।

(२)

अद्वैत ज्ञान श्रेष्ठ है, परन्तु शुरू में ईश्वर की सेव्यसेवक भाव से, उपास्य-उपासक भाव से आराधना करनी चाहिए। यह सबसे सहज पथ है, इसीसे आगे चलकर सरलता से अद्वैत ज्ञान प्राप्त होता है।

(३)

यदि तुम ईश्वर के दर्शन करना चाहो तो हरिनाम पर दृढ़ विश्वास रखो और सदसत्-विवेक करो।

अवतरे विवेकानन्द रे !

— सारदानन्द

(विहाग मिश्र तीनताल)

अवतरे विवेकानन्द रे !
हरने जग के दुख-द्वन्द्व रे ।।
दिव्य स्वरूप भूलकर भ्रम में
डूब चले थे हम तो तम में
बने मोह से अंध रे ।।१

स्वामी तुमने हमें जगाया
तम-जड़ता को दूर भगाया
काट दिये सब बंध रे ।।२

जीव भाव का जाल हटा के
ब्रह्मबोध हममें प्रकटा के
किया मुक्त स्वच्छन्द रे ।।३

□

लो हमारा नमन् !

(हिंडोल— रूपक)

यतिवर लो हमारा नमन ।
मोह-माया-तिमिर हरने आज तव आगमन ।।

नाम करुणा से तुम्हारी सहज हो रिपुदमन ।
स्वार्थ भागे, ज्ञान जागे, शुद्ध बन जाय मन ।।

दो विवेक-विराग-श्रद्धा-त्याग-तप-सयमन ।
प्रवल देहासक्ति हर लो, हो भवतृषाशमन ।।

तमो-जड़ता-भय-निबलता पर करो आक्रमण ।
दिव्यता अभिव्यक्त कर दो, न हो पुनरागमन ।।

*

एक दस्तक : आपके दरवाजे

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

सर्वसमर्थ भगवान श्रीरामकृष्ण, जगज्जननी माँ सारदा और विश्ववंद्य स्वामी विवेकानन्दजी की असीम अहैतुकी कृपा से विवेक शिखा इस अंक के साथ अपने नौवें वर्ष में प्रवेश कर रही है। और, मैं इस अवसर पर इनके समक्ष झुका हुआ हूँ –श्रद्धा से, कृतज्ञता से। अनेक व्यवधान इन वर्षों में आते रहे और हर आँधी को, तूफान को, बाधा-विघ्न को इन त्रिदेवों ने अपनी करुणापूर्ण कृपा से निरस्त किया और विवेकशिखा प्रज्वलित होकर अपना आलोक विकीर्ण करती रही।

निश्चय ही आप पाठकों ने भी हमारी त्रुटियों के कारण हुई असुविधाओं पर ध्यान नहीं देकर निरन्तर अपने स्नेह-सहयोग से हमें सम्बल प्रदान किया। हमारी विवशताओं को आपकी सहानुभूति मिली। हम लड़खड़ाये, पर गिरे नहीं। हर बार आपकी सम्वेदना हमें संभालती रही। विवेक शिखा के आप समस्त पाठकों के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता अर्पित करता हूँ। हमें पूरा विश्वास है, आपका यही स्नेह हमें भविष्य में भी मिलता रहेगा।

रामकृष्ण मिशन के अनेक साधु-ब्रह्मचारियों ने अपनी रचनाओं और अन्य प्रकार के सहयोगों के द्वारा हमारी हर मुश्किल को आसान बनाने को सदैव कृपा की। उन्होंने हमें ढाढ़स बँधाया, शक्ति दी और कई रूपों में सहायताएं दीं। मैं इन समस्त श्रद्धेय साधुओं के समक्ष प्रणत हूँ।

आज हम एक विचित्र त्रासदी के दौर से गुजर रहे हैं। हमारे पास प्रबल शक्ति है, पर उसकी सदुपयोगिता नहीं; अनन्त ऊर्जा है, पर उसके सद्‌प्रयोग की दृष्टि नहीं; ओजस्वी मन है, पर एकाग्रता नहीं। नतीजा साफ है। हम पथहारा, दिशाहारा हो रहे हैं। हम चल तो रहे हैं निरंतर, पर कहीं पहुँच नहीं पा रहे हैं। पतवार तो चला रहे हैं अविराम, पर नौका तट से छूट नहीं पा रही है। हम विभ्रमित, चकित और विस्मित हैं। एक निराशा के गर्त में हम डूबते जा रहे हैं। अंधकार भरे, निराशा से घिरे, तंद्रा में डूबे और व्यथा-वेदना से टूटे हर दरवाजे पर विवेक शिखा एक दस्तक देती है – जागरण की, अनुभूति की, आत्मोद्धार की, आंतरिक परिवर्तन की और समग्रगत रूपान्तरण की। यह दस्तक आपके दरवाजे विवेक शिखा के माध्यम से श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा और स्वामी विवेकानन्द ही देते हैं। सुनिए, यदि आपके पास कान हों तो सुनिए यह दस्तक। यह अँधेरे पर रोशनी की दस्तक है, हताशा पर आशा और विश्वास की दस्तक है, भय पर अभय की दस्तक है और सबसे बढ़कर पशुता पर मनुष्यता की दस्तक है, दानवता पर दिव्यता की दस्तक है।

स्वामीजी हमें जगा रहे हैं दस्तक देकर। क्या कहना चाहते हैं वे हमसे? सुनिए भगिनी निवेदिता के मुख से। स्वामीजी की महासमाधि के मात्र दो वर्ष बाद सन् १९०४ ई० की ९ जनवरी को स्वामीजी

के जन्मोत्सव के अवसर पर बेलुड़ मठ में आयोजित जनसभा को सम्बोधित करते हुए १० जनवरी को भगिनी निवेदिता ने कहा था— "हमलोग यहाँ केवल उत्सव के आनन्द में क्षण भर के लिए उन्मत्त होने को एकत्र नहीं हुए हैं। स्वामीजी की शिक्षा को हमलोग जिससे अपने प्राणपण से कार्य में परिणत कर सकें, उसके लिए शक्ति प्राप्त करने के लिए ही इस उत्सव का आयोजन किया गया है। उनकी क्या शिक्षा थी? क्या वे चाहते थे कि लोग उनके नाम का गान करें? नहीं, हमलोग जानते हैं कि नाम-यश को वे अपने प्राणों से घृणा करते थे। क्या वे चाहते थे कि उनके गुरु श्रीरामकृष्ण के नाम का चारों ओर प्रचार हो? नहीं, वे यह भी नहीं चाहते थे; क्या वे चाहते थे कि उनके विशेष उपदेश या कार्य-प्रणाली का सभी अनुसरण करें? नहीं, वे यह भी नहीं चाहते थे। वे चाहते थे कि सभी अपने पाँवों पर स्वयं खड़े हों, मनुष्य बनें।" (उद्बोधन, १ माघ १३१०, पृ० ३२)

यह है आपके द्वार पर स्वामीजी की दस्तक। आप श्रीरामकृष्ण का अनुयायी बनें या न बनें, यह महत्वपूर्ण नहीं है। आप स्वामीजी का यशोगान करें या न करें इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। महत्व की बात यह है कि आप आत्म-निर्भर बनें। स्वामीजी की एकमात्र आत्मिक एवं प्रबल आकांक्षा यह है कि उनके देशवासी अपने भीतर निहित अनन्त शक्ति को जाग्रत करें, आत्म-विश्वास के तेज से दीप्ति-मान हो उठें, अपनी आत्मशक्ति और आत्मश्रद्धा की अभिव्यक्ति से पूर्णत्व प्राप्त करें। अर्थात्, वे सही अर्थ में 'मनुष्य' बनें।

स्वामीजी सबको—प्रत्येक को—मनुष्य बनाना चाहते हैं। मनुष्य अपने उद्धार के लिए परमुखापेक्षी न होकर स्वयं आत्मोद्धारक बने। पुरुषार्थी बने। उनका आशय यह है कि प्रत्येक व्यक्ति मौलिक बने। स्वाधीन चिन्तन का विकास कर, अपने पथ का स्वयं निर्माण कर प्रत्येक व्यक्ति जीवन-यात्रा में अग्रसर हो। वे आपके दरवाजे पर दस्तक देते हुए कहते हैं— "उद्धरेदा-त्मात्मानम्" —आप ही अपना उद्धार करना होगा। सब कोई अपने-आपको उबारे। सभी विषयों में स्वाधीनता, यानी मुक्ति की ओर अग्रसर होना ही पुरुषार्थ है, जिससे और लोग दैहिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वाधीनता की ओर अग्रसर हो सकें, उसमें सहायता देना और स्वयं भी उसी तरफ बढ़ना ही पुरुषार्थ है। ... . जिन नियमों के द्वारा सब जीव स्वाधीनता की ओर बढ़ सकें उन्हींकी पुष्टि करनी चाहिए।" (पत्रावली : द्वितीय भाग पृ० १७९)

आज हम जाति और धर्म की दीवारों में कैद होकर जर्जर होते जा रहे हैं। हमारी ये दीवारें देश को भी जर्जर करती जा रही हैं। कश्मीर और पंजाब की समस्यायें हमें तोड़ रही हैं। उसके मूल में भी धार्मिक उन्माद ही तो है! स्वामीजी ऐसे मनुष्य की संरचना चाहते हैं जो इन समस्त क्षुद्र सीमाओं की दीवारों को लाँघकर—मनुष्य, केवल मनुष्य—मुक्त मनुष्य बन कर रह सके। स्वामीजी हमारी आँखें खोलते हुए कहते हैं—'मेरे गुरुदेव कहते थे कि हिन्दू, ईसाई इत्यादि नाम मनुष्य मनुष्य में भ्रातृ-प्रेम के होने में रुकावट डालते हैं। पहले हमें इन्हें तोड़ने का प्रयत्न करना चाहिए। उनकी कल्याण करनेवाली शक्ति तो अब नष्ट हो गयी है, और केवल वह पापमय प्रभाव रह गया है जिसके मलिन जादू से हममें से सर्वश्रेष्ठ मनुष्य भी राक्षसों का-सा व्यवहार करने लगते हैं।" (पत्रावली पृ० ३०१-२)

स्वामीजी का उदग्र विश्वास है कि अब जाति और धर्म की दीवारें ढहेंगी। एक नये मनुष्य का उदय होगा। वे अपनी दिव्य आँखों से देख रहे हैं कि उनके गुरुदेव श्रीरामकृष्ण के आविर्भाव से ये दीवारें ढहने लगी हैं। वे कहते हैं—"उनके (श्रीरामकृष्ण के) जन्म की तिथि से सत्ययुग आरम्भ हुआ

है। इसलिए सब प्रकार के भेदों का अन्त है और चाण्डाल सहित सब लोग उस दैवी प्रेम के भागी होंगे। पुरुष और स्त्री, धनी और दरिद्र, शिक्षित और अशिक्षित, ब्राह्मण और चाण्डाल—इन सब भेद-भावों का मूल नष्ट करने के लिए उनका जीवन व्यतीत हुआ था। वे शान्ति के दूत थे—हिन्दू और मुसलमानों का भेद, हिन्दू और ईसाइयों का भेद—वे सब भूतकालीन हो गये हैं। श्रेष्ठता के झगड़े—वे दूसरे युग से सम्बन्ध रखते हैं। इस सत्ययुग में श्रीरामकृष्ण के प्रेम की विशाल लहर ने सबको एक कर दिया है।" (पत्रावली : प्रथम भाग : पृ० ३८३)

देश आज अनेक समस्याओं से जूझ रहा है। गरीबी रेखा से नीचे पड़े-पड़े लोग दम तोड़ रहे हैं। शोषितों-पीड़ितों की व्यथा-कथा अलग है। युवा वर्ग आदर्शविहीन हो सुविधाभोगी, भोगोन्मुखी हो रहे हैं या फिर निराश हो आक्रोश से भरकर, हिंसा, लूट, बलात्कार की ओर मुड़ रहे हैं। देश में व्याप्त आतंकवाद युवा-आक्रोश का ही एक परिणाम है। हम किंकर्तव्य-विमूढ़ हो रहे हैं। समस्या जितनी सुलझायी जाती है उससे अधिक बढ़ जाती है। स्वामीजी युवकों के दरवाजे खड़े हो, बड़ी वेदनाभरी मर्मस्पर्शी वाणी में कुछ कहने को खड़े हैं। वे दस्तक देते हैं—"ऊँचे पदवालों या धनिकों का भरोसा न करना। उनमें जीवनी-शक्ति नहीं है—वे तो जीते हुए भी मुर्दे के समान हैं। भरोसा तुम लोगों पर है; गरीब, पद-मर्यादा-रहित किन्तु, विश्वासी तुम्हीं लोगों पर। दुखियों का दर्द समझो ··· जाओ, इसी क्षण जाओ उस पार्थ सारथी के मन्दिर में, जो गोकुल के दीन-दरिद्र ग्वालों के सखा थे, जो गुहक चाण्डाल को भी गले लगाने में नहीं हिचके, जिन्होंने अपने बुद्ध अवतार में अमीरों का न्योता इन्कार कर एक वारांगना का न्योता स्वीकार किया और उसे उबारा, जाओ उनके पास जाकर साष्टांग प्रणाम करो और उनके सम्मुख एक महाबलि दो, अपने जीवन की बलि दो—उन दरिद्रों, पतितों और उत्पीड़ितों के लिए, जिनके लिए भगवान युग-युग में अवतार लिया करते हैं, और जिन्हें वे सबसे अधिक प्यार करते हैं। ··· उनका नाम लेकर और उनपर अनन्त विश्वास रखकर भारत के शत-शत युगों से संचित, पर्वतकाय अनन्त दुःख-राशि में आग लगा दो, साहसपूर्वक इसका सामना करो।···· ··· विश्वास, सहानुभूति—दृढ़ विश्वास और ज्वलन्त सहानुभूति चाहिए।"

(पत्रावली : प्रथम भाग : पृ० ८३-८४)

स्वामीजी आपके दरवाजे एक दस्तक दे रहे हैं—प्रेम और प्रकाश की दस्तक, अभय और उदारता की दस्तक, सेवा, श्रद्धा, विश्वास और सहानुभूति की दस्तक तथा सबसे बढ़कर एक सीमान्तहीन, पूर्ण मनुष्य होने की दस्तक।

आइए, हम इस दस्तक को सुनें और अपने जीवन में रूपान्तरण लायें। स्वामीजी से मेरी प्रार्थना है कि हमें यह शक्ति दें कि हम उनकी दस्तकों को सुनकर एक अभिनव मानव बन सकें—एक वास्तविक मानव बन सकें। जय स्वामीजी !

□

स्वामी विवेकानन्द : बिहार से बिहार तक

— डा० केदारनाथ लाभ

रामकृष्ण संघ से बिहार का एक घनिष्ठ, प्रेरक और रागात्मक सम्बन्ध रहा है। बिहार के गया धाम में ही श्रीरामकृष्ण के पिता क्षुदीराम को विष्णु भगवान ने स्वप्न दिया था कि इस बार वे उनके घर अवतरित होंगे। वे ही विष्णु श्री रामकृष्ण के रूप में अवतरित हुए। जिन युवकों ने आकर श्री रामकृष्ण की शिष्यता ग्रहण कर संन्यास लिया उनमें सर्वप्रथम आनेवाले रखतूराम- लाटू महाराज अर्थात् स्वामी अद्भुतानन्द बिहार के छपरा जिले के ही निवासी थे। स्वयं श्रीरामकृष्ण ने वाराणसी जाने के क्रम में बिहार के देवघर में न केवल विश्राम किया था बल्कि शिव-रूप में जीवसेवा के व्यावहारिक रूप का उद्घाटन भी सर्वप्रथम यहीं संथाली मजदूरों को अन्न-वस्त्र देकर, किया था और रामकृष्ण संघ की स्थापना के उपरान्त जिस भूमि पर बेलुड़ मठ का निर्माण किया गया वह भूमि भी, संयोगवश, बिहार के पटना-निवासी श्री भागवत नारायण सिंह की ही थी, जिसे स्वयं स्वामी विवेकानन्द ने पसन्द की थी। ५ मार्च, १८९८ ई० को स्वामी विवेकानन्द के नाम इस भूमि का निबन्धन (रजिस्ट्रेशन) हुआ था।

श्री रामकृष्ण के अनेक प्रत्यक्ष शिष्यों ने बिहार की एकाधिक बार यात्रा की थी। स्वामी विवेकानन्द को बिहार से विशेष लगाव था। उनकी आध्यात्मिक साधना और वैचारिक क्षेत्र में कई मोड़ बिहार में ही आये। श्री रामकृष्ण के जीवनकाल में ही नरेन्द्रनाथ (कालान्तर में स्वामी विवेकानन्द) ने गया की यात्रा की थी। आध्यात्मिक अनुभूतियों की प्राप्ति की तीव्र लालसा से की गयी स्वामीजी की यह प्रथम तीर्थयात्रा थी। भगवान बुद्ध के अपूर्व त्याग, अलौकिक साधना और असीम करुणा से उद्वेलित होकर १८८६ ई० के अप्रैल महीने में नरेन्द्रनाथ ने तारक (स्वामी शिवानन्द) और काली (स्वामी अभेदानन्द) नामक अपने दो गुरुभाइयों के साथ गया के लिए कलकत्ते से प्रस्थान किया। बुद्ध गया में नरेन्द्र ने बोधिसत्व के मन्दिर के दर्शन किये। फिर "बोधिवृक्ष के नीचे पवित्र प्रस्तरासन पर नरेन्द्र नाथ ध्यानस्थ हुए। उनके गुरुभाइयों ने ध्यान टूटने पर निहारकर देखा—नरेन्द्र पत्थर की तरह निश्चल हैं, उनका शरीर स्पन्दनहीन है। बहुत देर बाद तनिक अर्द्ध-बाह्यज्ञान प्राप्त होने पर वे क्रन्दन कर उठे। दूसरे ही क्षण वे फिर से ध्यानस्थ हो गये। उनके ध्यानस्तिमित नेत्रों से सत्य की विमल ज्योति निकल पड़ी।"[1] बाद में तारकनाथ के जिज्ञासा करने पर नरेन्द्रनाथ ने कहा –"मन में एक गंभीर वेदना का अनुभव किया था। सब कुछ तो रह ही गये हैं, किन्तु वे कहाँ हैं ?...... बुद्धदेव का विरह इतना तीव्र होने लगा कि अपने को सँभाल नहीं पाया क्रन्दन करते हुए आपको बाँहों में जकड़ लिया।"[2] स्वामीजी की वह रात ध्यान में ही कट गयी। उनकी इच्छा थी बुद्ध गया में कुछ दिनों तक रहने की; किन्तु वहाँ भिक्षा में प्राप्त मड़ुए की रोटी स्वामीजी को पचती नहीं थी। फिर जाड़े का वस्त्र भी नहीं था। अतः वे ३-४ दिनों के बाद ही गया से काशीपुर (कलकत्ता) लौट गये। गया में एक दिन उपेन्द्र बाबू के घर पर उन्होंने मृदंग पर खयाल, ध्रुपद आदि रागों में अपने सुललित कंठ से गीत भी गाये थे।[3] इस यात्रा के सम्बन्ध में श्री 'म' ने लिखा है—

"नरेन्द्र बुद्ध गया से अभी ही लौटे हैं। वहाँ वे बुद्ध की मूर्ति के दर्शन कर उसके सामने गंभीर ध्यान में मग्न हो गये थे। जिस पेड़ के नीचे तपस्या

करके बुद्ध ने निर्वाण प्राप्त किया था, उस पेड़ की जगह एक दूसरा पेड़ उगा है, इसे भी उन्होंने देखा है ।"(रामकृष्ण वचनामृत : तृतीय भाग पृ० ४६१)

श्री रामकृष्ण ने स्वामीजी के गया से लौटने पर उनसे बुद्ध और बुद्ध धर्म के विषय में काफी जानकारी ली ।

(वचनामृत, तृतीय भाग, परिच्छेद— ३०)

स्वामीजी ने स्वास्थ्य-लाभ के लिए कई-बार वैद्यनाथ धाम (देवघर) की यात्रा की थी । १८८७ के आरम्भ में वे ज्वरग्रस्त हो गये थे । रोगमुक्त होने पर कई बार वैद्यनाथ धाम आये थे ।[4] पत्रावली से ज्ञात होता है कि वे दिसम्बर, १८८९ में वैद्यनाथ धाम में प्रायः तीन चार दिन टिके थे । 'विवेकानन्द चरित' के अनुसार "१८९० ई० के जुलाई मास में मठ भवन छोड़ने के बाद स्वामी जी ने पहले-पहल भागलपुर में वकील मथुरानाथ सिंह के मकान पर कुछ दिन व्यतीत किये । वहाँ से विदा लेकर वे अपने गुरुभाई अखण्डानन्दजी के साथ देवघर आये ।[5] जो हो, भागलपुर में सबसे पहले स्वामीजी कुमार नित्यानन्द सिंह के अतिथि रहे जो उनसे काफी प्रभावित हुए । कुमार साहब के निजी शिक्षक श्री मन्मथनाथ चौधरी के आग्रह पर स्वामीजी ने दूसरे दिन उनका आतिथ्य स्वीकार किया ।

भागलपुर के निवासियों के मन-प्राणों पर स्वामीजी ने प्रचुर और अमिट प्रभाव छोड़ा था । वहाँ स्वामीजी के प्रवास-काल की घटनाओं का उल्लेख श्री मन्मथनाथ चौधरी ने स्वामीजी के एक शिष्य को जून, १९०६ में लिखे एक पत्र में किया है : वे लिखते हैं– "अगस्त १८९० की एक सुबह स्वामी अखण्डानन्द के साथ स्वामी विवेकानन्द अप्रत्याशित रूप से मेरे घर पर आ गये । उन दोनों को साधारण साधु समझकर, मैंने उनपर विशेष ध्यान नहीं दिया । दिन के भोजनोपरान्त, हमलोग एक साथ बैठे थे । उन्हें अशिक्षित होने का अनुमान कर मैंने उन लोगों से कोई वार्त्तालाप नहीं किया और बौद्धमत पर एक पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद पढ़ने लगा । थोड़ी देर बाद स्वामीजी ने मुझसे पूछा कि मैं कौन-सी पुस्तक पढ़ रहा हूँ । मैंने उन्हें पुस्तक का नाम बता दिया और पूछा, 'क्या आप अंग्रेजी जानते हैं । उन्होंने उत्तर दिया - 'हाँ, थोड़ी-थोड़ी ।' तब मैंने उनसे बुद्ध धर्म पर बात-चीत की और तुरत मुझे लगा कि वे मुझसे हजार गुना अधिक विद्वान हैं ।

"फिर उनके संस्कृत ज्ञान की परीक्षा लेने के उद्देश्य से अपने पास उपलब्ध सभी उपनिषदों को मैं ले आया और उनमें निहित अनेक दुरूह अवतरणों पर प्रश्न किये । उनके प्रदीप्त उत्तरों से मुझे स्पष्ट प्रतीत हुआ कि उनका शास्त्रों पर आधिपत्य विस्मयकारी है और उपनिषदों का जिस ढंग से उन्होंने पाठ किया वह बड़ा ही मोहक था । अतः अंग्रेजी, संस्कृत और योग पर उनके विलक्षण ज्ञान के सम्बन्ध में असंदिग्ध होकर मैं उनकी ओर अत्यधिक आकर्षित हो गया । मैं उनके प्रति इतना समर्पित हो गया कि मैंने उन्हें सदा भागलपुर में ही रहने का तीव्र आग्रह किया ।

एक बार मैंने उन्हें अपनेतईं गुनगुनाते हुए लक्ष्य किया । अतः मैंने उनसे पूछा कि क्या वे गा सकते हैं ? उन्होंने कहा— 'थोड़ा-बहुत' । हमलोगों द्वारा जोर डालने पर उन्होंने गाया और मैं समान रूप से विस्मित हुआ कि संगीत में भी उनका आश्चर्यजनक अधिकार है । स्वामीजी की स्वीकृति पाकर, दूसरी रात, कुछ संगीतज्ञ आमंत्रित किये गये । यह सोचकर कि संगीत अधिक-से-अधिक नौ-दस बजे रात तक समाप्त हो जायगा मैंने आमंत्रितों के लिए भोजन की व्यवस्था नहीं की । स्वामीजी बिना विराम के दो या तीन बजे तक गाते रहे । सभी निरपवाद रूप से इतने मोहित हो गये कि एक व्यक्ति भी अपने स्थान से

नहीं हिला, न किसी ने घर जाने की सोची। कैलाश बाबू, जो तबले पर स्वामीजी की संगत कर रहे थे, अन्त में, छोड़ने के लिए विवश हो गये, क्योंकि उनकी ऊँगलियाँ सख्त और सुन्न हो गयी थीं। ऐसी अतिमानवीय शक्ति मैंने अन्य किसी व्यक्ति में नहीं देखी है, न पुनः इसे देखने की आशा है।

"दूसरे दिन मैंने उन्हें भागलपुर के धनिकों से परिचय कराने का प्रस्ताव किया और कहा कि मैं अपनी गाड़ी पर उन्हें उन लोगों के पास ले जाऊँगा। लेकिन उन्होंने अस्वीकार कर दिया और कहा, "धनिकों के यहाँ जाना संन्यासियों का धर्म नहीं है।" उनके प्रज्वलित वैराग्य ने मुझ पर गहरा प्रभाव डाला।

"स्वामीजी भली भाँति जानते थे कि मैं स्वेच्छा-पूर्वक या आसानी से उन्हें भागलपुर से जाने नहीं दूँगा, अतः एक दिन, जब मैं बाहर था, उन्हें भागल-पुर छोड़ने का अवसर मिल गया। वापस लौटने पर मैंने उनकी अथक खोज की, किन्तु उन्हें कहीं नहीं पाया।

"अमेरिका से लौटने के बाद उन्हें एक बार पुनः भागलपुर लाने की मेरी इच्छा थी, किन्तु समयाभाव के कारण वे नहीं आ सके।"

भागलपुर से जाने के पूर्व स्थानीय जैन विद्वानों से भी स्वामीजी की लम्बी और विद्वत्तापूर्ण बातचीत हुई थी।

स्वामीजी भागलपुर में रामकृष्ण मिशन का केन्द्र खोलने के भी समर्थक थे। कैलिफोर्निया से २७ फरवरी १६०० ई० को अपने गुरुभाई स्वामी अखण्डानन्द को लिखित एक पत्र में उन्होंने लिखा था – 'भागलपुर में केन्द्र खोलने का जो तुमने लिखा है, वह विचार विद्यार्थियों को शिक्षा देना इत्यादि—निःसन्देह बहुत अच्छा है, परन्तु हमारा संघ दीन-हीन, दरिद्र, निरक्षर, किसान तथा श्रमिक समाज के लिए है, और उनके लिए सब कुछ करने के बाद समय बचेगा, केवल तब कुलीनों की बारी आयगी। (पत्रावली : पृ० २३८)

अमेरिका आदि देशों की प्रथम यात्रा कर लौटने के उपरान्त पुनः स्वामी विवेकानन्द १६ दिसम्बर १८६८ को वैद्यनाथ धाम (देवघर) आये और यहाँ जनवरी १८६६ के अंत तक प्रायः डेढ़ महीनेरहे। इस बार भी वे स्वास्थ्य-लाभ के लिए ही आये थे और बाबू प्रियनाथ मुखर्जी के निवास-स्थल पर ठहरे थे। यहाँ उनका अधिक समय अध्ययन, पत्र-लेखन, और घंटों टहलने में व्यतीत होता था। अधिकांशतः वे अकेले रहते थे। जन-कार्यों और संगठनात्मक दायित्वों से मुक्त रहने के कारण यहाँ उनका मन ध्यान में निमग्न हो जाया करता था।

"रुग्ण रहने के बावजूद देवघर में स्वामीजी सक्रिय थे। ३ जनवरी १८६८ को अपनी एक बंगाली शिष्या श्रीमती मृणालिनी बसु को जो पत्र उन्होंने देवघर से लिखा था उससे उनका बहु-आयामी व्यक्तित्व प्रकट होता है, यहाँ हम उन्हें एक समाजशास्त्री के रूप में, रीति-रिवाजों और विधवा-विवाह के उद्भव, और अन्य विषयों पर अपने विचार प्रस्तुत करते हुए पाते हैं।"[7] कुछ अग्निधर्मी विचारोत्तेजक अंश देखिए :—

(१) ऋषि, मुनि या देवता, किसी की सामर्थ्य नहीं कि वे सामाजिक नियमों का प्रवर्तन करें। जब समाज के पीछे किसी समय की आवश्यकताओं का झोंका लगता है तब वह आत्मरक्षा के लिए आप ही आप कुछ आचारों की शरण लेता है। ऋषियों ने केवल उन आचारों को एकत्र कर दिया है, बस। जैसे, आत्म-रक्षा के लिए मनुष्य कभी कभी बहुत-से ऐसे उपायों का प्रयोग करता है जो उस समय के लिए तो रक्षा पाने के उपयोगी हों परन्तु भविष्य के लिए बड़े ही अहितकर ठहरें,

वैसे ही समाज भी बहुत अवसरों पर उस समय के लिए तो बच जाता है, पर जिस उपाय से वह बचता है वही अन्त में भयंकर हो जाता है।

जैसे, हमारे देश में विधवा-विवाह का निषेध। ऐसा न सोचना कि ऋषियों या दुष्ट पुरुषों ने उन नियमों को बनाया है। यद्यपि पुरुष स्त्रियों को पूर्णतया अपने अधीन रखना चाहते हैं तो भी बिना समाज की सामयिक आवश्यकता की सहायता लिये वे कभी कृतकार्य नहीं होते। इन आचारों में से दो विशेष ध्यान देने योग्य हैं।

(क) नीच जातियों में विधवा-विवाह होता है।

(ख) उच्च जातियों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या अधिक है।

अब यदि हर एक लड़की का विवाह करना ही नियम हो तो एक-एक लड़की के लिए एक-एक पति मिलना ही मुश्किल है, फिर दो-तीन कहाँ से आयें? इसीलिए समाज ने एक तरफ की हानि कर दी है, यानी जिसको एक बार पति मिल गया है उसको वह फिर पति नहीं देता; अगर दे तो एक कुमारी को पति नहीं मिलेगा। दूसरी तरफ देखिये कि जिन जातियों में स्त्रियों की कमी है उनमें ऊपर लिखी बाधा न होने से विधवा-विवाह प्रचलित है।

उसी प्रकार जातिभेद तथा अन्यान्य सामाजिक आचारों के विषय में भी सोचना चाहिए।"

(पत्रावली : पृ० १६६-७८)

यह ५ पृष्ठों का लम्बा पूरा पत्र ही स्वामीजी के देवघर-निवासकाल के उदात्त चिन्तन, गंभीर मनन और अग्निपूत वैचारिक तेज से आप्लावित है।

पत्रावली से ज्ञात होता है कि स्वामीजी सन् १९०० ई० में पुनः देवघर आये थे और प्रियनाथ मुखर्जी के भवन में ही टिके थे। यहाँ से २३ दिसम्बर को श्रीमती मृणालिनी बसु को जो छः पृष्ठों का बड़ा-सा पत्र उन्होंने लिखा था वह ईश्वर, व्यक्ति और समाज, मातृभूमि, सामाजिक प्रथा, शिक्षा आदि अनेक विषयों पर उनके मौलिक, उदात्त एवं क्रान्तिकारी विचारों का एक दस्तावेज है। कुछ अंश देखें :--

"जो समाज के आधिपत्य के लिए व्यक्तिगत स्वतंत्रता का त्याग चाहता है वह सिद्धान्त समाजवाद कहलाता है और जो व्यक्ति के पक्ष का समर्थन करता है वह व्यक्तिवाद कहलाता है।

"समाज का व्यक्ति पर निरन्तर शासन तथा संस्था एवं नियमबद्धता द्वारा बलपूर्वक आत्मत्याग और इसके परिणाम तथा काल का ज्वलन्त उदाहरण - यही हमारी मातृभूमि है। इस देश में शास्त्रीय आज्ञानुसार मनुष्य जन्म लेते हैं, आजीवन वे नियुक्त-विधि से खाते पीते हैं, और विवाह और विवाह-सम्बन्धी कार्य भी इसी प्रकार करते हैं, यहाँ तक कि शास्त्रों के नियमानुसार ही वे मरते भी हैं। एक विशेष गुण को छोड़कर यह कठिन नियमबद्धता दोषों से परिपूर्ण है। ....

"यदि यह निश्चित है कि नियम से रहने से प्रतिष्ठा प्राप्त होती है, यदि परम्परा से चली आयी हुई प्रथा को कठोरता से पालन करना पुण्य है, तब बताइए कि वृक्ष से बढ़कर पुण्यात्मा कौन हो सकता है, और रेलगाड़ी से बढ़कर भक्त और पवित्र महात्मा कौन है? किसने पत्थर के टुकड़ों को प्रकृति का नियम उल्लंघन करते हुए देखा है? किसने गाय-भैंस को पाप करते हुए जाना?

"विशाल जहाज और बलवान रेल का इंजन बुद्धिहीन है, वे हिलते हैं और चलते हैं परन्तु उनमें बुद्धि नहीं है। और, वह जो दूर से नन्हा कोड़ा अपने जीवन की रक्षा के लिए रेल की पटरी से हट गया वह क्यों बुद्धिमान है? यन्त्र में इच्छा-शक्ति का कोई प्रकाश नहीं है। यन्त्र कभी नियम के

उल्लंघन करने की कोई इच्छा नहीं रखता। कीड़ा नियम का विरोध करना चाहता है, और नियम के विरुद्ध जाता है, चाहे उस प्रयत्न में वह सिद्धि लाभ करे या असिद्धि; इसलिए वह बुद्धिमान है। जिस अंश में इच्छा-शक्ति के प्रबल होने में सफलता होती है, उसी अंश में दुख अधिक होता है और जीव उतना ही ऊँचा होता है।....''

यह पूरा पत्र स्वामीजी के गहन चिन्तन का अभिनव प्रतिफलन है।

स्वामी विवेकानन्द की प्रथम तीर्थ-यात्रा गया धाम की ही हुई थी और उनके जीवन की अंतिम तीर्थयात्रा भी गया-वाराणसी की ही हुई। अपनी महासमाधि के मात्र ५ महीने पूर्व २८ जनवरी १९०२ ई० को वे जापान के प्रसिद्ध विद्वान कलाकार और विचारक तेनसिन ओकाकुरा, अपनी शिष्या कुमारी जोसेफिन मैक्लायड, स्वामी निर्भयानन्द और स्वामी बोधानन्द आदि के साथ बाँकीपुर (पटना) होते हुए गया पहुँचे। २९ जनवरी को वहाँ उन्होंने सर्वप्रथम विष्णु-पद-पद्म का दर्शन किया और फिर २९ जनवरी १९०२ ई०— अपने जीवन-काल के अंतिम जन्म-दिन (उस वर्ष उसी दिन उनकी जन्म-तिथि पड़ी थी)— को बुद्ध गया पहुँचे। वहाँ प्रायः एक सप्ताह तक उन्होंने बुद्ध गया के महन्त के अतिथि-भवन में उनका आतिथ्य ग्रहण किया।

बुद्ध गया में प्रति दिन वे मन्दिर का दर्शन करते और अपने शिष्यों के समक्ष प्रत्येक प्रतिमा की स्थापत्य कला और ऐतिहासिकता की व्याख्या करते। स्वामीजी ने गया के निकट के कुछ मन्दिरों, गुफाओं और अन्य स्थानों की भी यात्रा की।

गया की यात्रा से स्वामीजी ने बौद्ध धर्म और बौद्ध साहित्य के विषय में अनेक नये तथ्यों की जानकारी प्राप्त की। ९ फरवरी, १९०२ को वाराणसी से स्वामी स्वरूपानन्द को उन्होंने लिखा, 'बौद्ध धर्म के विषय में मुझे कुछ दिनों से बहुत-सा ज्ञान हुआ है। मैं इसका प्रमाण देने को तैयार हूँ ... बोध गया से और बौद्ध साहित्य से मैंने बहुत-सी नयी बातें जानी है। ....

'बौद्ध धर्म और नव हिन्दू धर्म के सम्बन्ध के विषय में मेरे विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ है। उन विचारों को निश्चित रूप देने के लिए कदाचित् मैं जीवित न रहूँ परन्तु उसकी कार्यप्रणाली का संकेत मैं छोड़ जाऊँगा और तुम्हें और तुम्हारे भ्रातृगणों को उस पर कार्य करना होगा।'' (पत्रावली पृ० ३०९ १०)

स्वामीजी की इस गया यात्रा का रोचक वर्णन प्रस्तुत करते हुए उनके जीवनीकार श्री सत्येन्द्रनाथ मजूमदार ने लिखा है—

"कुछ दिनों बाद १९०२ ई० के जनवरी मास में स्वामीजी डॉ० ओकाकुरा का आमन्त्रण स्वीकार कर उनके साथ बुद्ध गया जाने के लिए तैयार हुए। यह भी निश्चय हुआ कि वहाँ से काशीधाम में जाकर कुछ दिन विश्राम करेंगे। स्वामीजी के परिव्राजक जीवन का यही अन्तिम भ्रमण था।

"बहुत दिनों के बाद विवेकानन्द आज फिर बोधिद्रुम के नीचे पद्मासन में ध्यानमग्न हैं। तीव्र वैराग्य से प्रेरित हो बालक श्री नरेन्द्रनाथ एक दिन उसी बोधिद्रुम के नीचे सत्य प्राप्ति की इच्छा से ध्यान-मग्न हुए थे। उनकी वह साधना सिद्ध हुई थी।.. वह एक दिन था - जब उन्होंने अपने जीवन के प्रथम प्रभात के धुँधले आलोक में जिस सत्य की उपलब्धि की थी, आज इस शांत, स्तब्ध, महिमामय जीवन-संध्या में क्या उसकी स्मृति नहीं जाग उठी है?... पाठक, एक बार कल्पना के नेत्रों से भगवान बुद्धदेव के पवित्र साधनपीठ पर बैठे हुए इन संन्यासी के करुणाकातर मुखमण्डल की ओर देखो, समझ सकोगे, यह ध्यान, यह साधना अपनी मुक्ति की कामना से नहीं है।

एक उत्पीड़ित, उपेक्षित, दु:खी, पतित जाति के प्रतिनिधि के रूप में—तीस करोड़ मानव के कातर आर्तनाद की असीम प्रतिध्वनि को वक्ष में धारण कर वे बोधिद्रुम के नीचे आज ध्यानमग्न हैं। इसी सिद्धासन पर कितने ही वर्षों पूर्व एक दूसरे महा-पुरुष निखिल विश्व के दुःखों को दूर करने की कामना से ध्यानमग्न हुए थे - भारत के अतीत इतिहास में वह एक स्मरणीय दिन था और एक दिन आयेगा जब भावी सन्तान महिमा-समुज्वल अतीत इतिहास में इस दिन को भी सुवर्णाक्षरों में लिख कर रखेगी।"[८]

यह विशेष लक्ष्य करने की बात है कि स्वामीजी ने अपनी प्रथम आध्यात्मिक तीर्थ-यात्रा गया से शुरू की —अपने परमाराध्य गुरुदेव श्रीरामकृष्ण के लीलासंवरण के ठीक पाँच माह पूर्व – और गया में ही अपनी तीर्थयात्रा का प्रकारांतर से समापन किया (गया से वे वाराणसी गये थे विश्राम के लिए),अपने शरीर-त्याग से प्राय: मात्र पाँच माह पूर्व। ऐसा लगता है मानो जिन विष्णु ने श्री रामकृष्ण के रूप में अवतार लिया था उन्हें प्रणामकर उन्होंने आध्यात्मिक यात्रा शुरू की थी और युगाचार्य के रूप में समग्र विश्व में अपनी कीर्ति कौमुदी फैलाकर अपनी जीवन लीला के यवनिका-पतन के कुछ ही समय पूर्व पुन: श्री विष्णुपाद और भगवान बुद्ध के चरणों में कृतज्ञता के रूप में अपनी अंतिम प्रणति निवेदित कर वे मुक्त हो गये। एक महाज्योति ने अपनी क्रीडा बिहार से शुरू कर बिहार में ही उसका एक प्रकार से समापन पर्व लिख दिया।

वस्तुत: बिहार की यात्राओं ने स्वामी विवेकानन्द के व्यक्तित्व गठन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। बिहार ने उन्हें भारतीयों के दु:ख-दैन्य का निकट से प्रथम अनुभव कराया। यहाँ उन्हें मड़ए की रोटी तक खानी पड़ी और यहीं उन्हें अनुपम समाधि की प्रथम दिव्यानुभूति हुई, भगवान बुद्ध की करुणा से प्रथम साक्षात्कार हुआ और यहीं उन्हें बौद्धधर्म और साहित्य तथा दर्शन के विषय में अनेकानेक नये तथ्य उपलब्ध हुए। उनके वैचारिक क्षितिज को यहाँ एक नया आयाम, अभिनव विस्तार मिला। और दूसरी ओर, स्वामीजी ने अपनी विभिन्न यात्राओं से बिहार को एक विलक्षण गरिमा, चिरन्तन गौरव और अनुपम धन्यता प्रदान की।

□

पाद टिप्पणी

१. सत्येन्द्र नाथ मजूमदार : विवेकानन्द चरित : अष्टम संस्करण : पृ० ११३
२. स्वामी गंभीरानन्द : युगनायक विवेकानन्द (बंगला) : चतुर्थ संस्करण : पृ० १३०
३. वही पृ० १३०-१
४. वही पृ० १६३
५. सत्येन्द्रनाथ मजूमदार पृ० १६४-५
६. डॉ० कालीकिंकर दत्त का लेख 'रामकृष्ण मिशण एण्ड बिहार' रामकृष्ण मिशन आश्रम पटना : गोल्डेन जुबिली सोवनीर पृ० ४५
७. द लाइफ ऑफ स्वामी विवेकानन्द : वॉल्युम २ अद्वैत आश्रम : कलकत्ता पृ० ४१९
८. सत्येन्द्रनाथ मजूमदार : विवेकानन्द चरित : पृ० ५२४-२६
(आरंभ में) श्री 'म' रचित श्री रामकृष्ण वचनामृत : तृतीय भाग : पृ० ४६१

वाराणसी में स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द की जीवनी में लिखा है कि स्वामीजी की मां ने पुत्र प्राप्ति के लिए काशी के वीरेश्वर शिव की आराधना की थी। इस ऐकान्तिक आराधना के फलस्वरूप १२ जनवरी सन् १८६३ ई० को इस बालक का जन्म हुआ। बालक का व्यवहार प्रारम्भ से ही असाधारण-सा था। शिवजी के ध्यान करने में बालक की रुचि थी तथा संन्यास-जीवन के प्रति उनका विशेष आकर्षण था। मानो इस बालक पर सर्वत्यागी शंकर भगवान का पूर्ण प्रभाव था।

स्वामीजी के बचपन का नाम नरेन्द्र था। युवावस्था में, ही परम सत्य के अनुसंधान में उनके अन्तःकरण की व्याकुलता तीव्र हो उठी। अचानक इन्हीं दिनों दक्षिणेश्वर के सन्त श्री रामकृष्णदेव के साथ उनकी भेंट हुई। उनके दिव्य संस्पर्श ने धीरे-धीरे युवक नरेन्द्रनाथ के चित्त पर गहरा प्रभाव डाला। बाद में उन्होंने श्री रामकृष्ण के चरणों में आत्म-निवेदन किया। रामकृष्णदेव भगवान् के अवतार थे। सर्व-धर्म समन्वय तथा जीव मात्र में ईश्वरत्व का अस्तित्व—अपने इन दो महान सिद्धान्तों के प्रचार के लिए उन्होंने नरेन्द्र को अपना सहायक बनाया। अपने गुरु की आज्ञा से अन्य गुरु-भाइयों को साथ लेकर नरेन्द्र ने एक संन्यासी दल का संगठन किया। यथाविधि संन्यास लेने के बाद नरेन्द्र तथा उनके गुरु-भाइयों ने अपने नाम बदल दिये। नरेन्द्र ने अपना नाम स्वामी विवेकानन्द रखा। श्री रामकृष्ण के शरीर छूटने के पश्चात् स्वामी विवेकानन्द ने किराये पर एक मकान लिया। यह मकान कलकत्ते के समीप वाराहनगर में था। स्वामीजी और उनके अन्य गुरु-भाई इस मकान में अपने गुरु के बताये हुए मार्ग के अनुसार भगवत् साधना में तल्लीन हो गये।

वाराहनगर में रामकृष्ण संघ की स्थापना करने के पश्चात् स्वामीजी के अन्तःकरण में उत्तर भारत के सभी तीर्थों की यात्रा करने की प्रबल इच्छा हुई। स्वामीजी ने वाराणसी को ही तपश्चर्या के लिए सर्वश्रेष्ठ स्थान माना, क्योंकि यहाँ की भूमि शिवोपासना का पवित्र केन्द्र है। इसलिए सन् १८८८ ई० में वाराणसी की उनकी पहली तीर्थ-यात्रा हुई। यह नगर हिन्दुओं की पवित्र गंगा नदी के पवित्र तट पर बसा हुआ है। यह वही स्थान है जहाँ श्री रामकृष्ण को भगवान शिव और माता अन्नपूर्णा के दिव्य दर्शन प्राप्त हुए थे। इसी स्थान पर बुद्ध, शंकराचार्य तथा चैतन्य महाप्रभु ने उपदेश दिये थे। अतीत में अनेक महापुरुषों ने अपनी साधना से इस स्थान को सजीव बनाए रखा था। निःसन्देह, इन सभी बातों से स्वामी जी विशेष रूप से आकृष्ट हुए थे।

यहाँ आकर तपस्या, ध्यान धारणा, भजन आदि में उन्होंने अपने मन-प्राण अर्पित कर दिये। वे गंगा स्नान, बाबा विश्वनाथ, माता अन्नपूर्णा और वीरेश्वरशिव जी के मन्दिर तथा अन्यान्य मंदिरों में दर्शन किया करते थे, साधुओं के साथ क्षेत्र आदि से मधुकरी भिक्षा लाकर भोजन करते थे; संध्याकाल में वे गंगा-तट के श्मशान पर भगवद्ध्यान में निविष्ट हो जाते, फिर वहाँ से लौटते समय बाबा विश्वनाथजी की गम्भीर तथा भावपूर्ण पूजा-आरती देखकर अपार आनन्द का अनुभव करते थे।

एक दिन स्वामीजी सारनाथ देखने गये। यह स्थान वाराणसी से ५-६ मील की दूरी पर है। इसी स्थान पर भगवान बुद्ध ने धर्म-चक्र-प्रवर्त्तन

किया था। स्तूपों तथा मन्दिरों से यह स्थान किसी समय महिमान्वित था। पर उस समय वहाँ के स्तूपों तथा मंदिरों के ध्वंसावशेष भूगर्भ में लुप्त थे। यह स्थान जंगलों से ढका हुआ था। काल का यह विकराल प्रभाव देख स्वामीजी स्तम्भित-से खड़े रहे पर कुछ ही क्षणों में उनका हृदय एक अनिर्वचनीय पुलक से भर उठा। हजारों वर्ष पहले वहाँ बुद्ध भगवान तथा उनके अनुयाइयों की पुण्य उपस्थिति ने ही स्वामीजी के मन में इस पुलक का संचार किया था। भक्ति-भाव से उन्होंने बुद्ध भगवान को प्रणाम किया।

समय-समय पर स्वामीजी वाराणसी आते रहे। हर बार कुछ ऐसी घटनाएँ हुईं जो रोचक होने के साथ साथ शिक्षाप्रद भी हैं। पहली बार स्वामीजी जब यहाँ आये तब द्वारकादासजी के आश्रम में ठहरे। प्रसिद्ध पंडित तथा बंगाल के लेखक श्री भूदेव चन्द्र मुखोपाध्याय से द्वारका दास जी ने स्वामीजी का परिचय कराया। स्वामी जी और भूदेव बाबू दोनों व्यक्ति बहुत देर तक अपने-अपने विचार प्रकट करते रहे। जब स्वामी जी उठकर चले गये तब भूदेव बाबू ने कहा "बड़े आश्चर्य की बात है कि इतनी कम आयु में स्वामी जी को महान् अनुभव है तथा इनकी अन्त. दृष्टि बहुत ही पैनी है! मुझे विश्वास है कि भविष्य में स्वामीजी जरूर एक महान व्यक्ति बनेंगे।

यहाँ स्वामीजी तैलंग स्वामीजी से भी मिले। काशी का यह प्रसिद्ध साधु सदा गहरी समाधि में लीन रहता था। स्वामीजी ने महान् ज्ञानी और सन्त स्वामी भास्करानन्द के भी दर्शन किये। काम तथा लोभ पर विजय प्राप्त करना सम्भव है कि नहीं — इस विषय पर उनसे बातचीत हुई। प्रसंगत: स्वामीजी ने रामकृष्णदेव के इस कथन का उल्लेख किया कि काम तथा लोभ पर विजय पाए बिना ईश्वर प्राप्ति नहीं हो सकती। भास्करान्द जी के इस कथन का कि व्यक्ति के लिए पूर्णरूपेण काम तथा लोभ पर विजय पाना असम्भव है स्वामीजी ने खंडन किया। स्वामीजी ने दृढ़ता के साथ उत्तर दिया—ऐसे अनेक महापुरुष हुए हैं जिन्होंने काम तथा लोभ पर पूर्ण विजय प्राप्त की है और मैंने भी एक ऐसे महापुरुष (श्री रामकृष्ण) को देखा है जिन्होंने पूर्णरूप से काम तथा लोभ पर विजय प्राप्त की है"। पर स्वामी भास्करानन्द यह मानने को तैयार नहीं हुए। अतः उनसे असंतुष्ट होकर स्वामी विवेकानन्द वहाँ से उठ कर चले आये।

इसके दूसरे दिन की घटना है। स्वामीजी पूजा चढ़ाकर दुर्गाजी के मंदिर से लौट ही रहे थे कि कुछ बन्दरोंने उनका पीछा किया। डर के कारण स्वामीजी भागने लगे। कुछ ही दूर पर एक वृद्ध साधु बैठे थे। उन्होंने एकाएक चिल्लाकर कहा, "स्वामीजी डरो मत, हिम्मत के साथ पशुओं के साथ डट जाओ" सुनते ही स्वामीजी डट गये। बन्दर डर कर भाग गये। स्वामीजी के लिए यह एक सबक था। बाद में अमेरिका में दिये एक भाषण में उन्होंने इस घटना का उल्लेख किया था। इसमें अन्तर्निहित शिक्षा को स्वीकार करते हुए उन्होंने ओजस्वी शब्दों में कहा था "विपत्तियों तथा कठिनाइयों से भागो मत। उनका सामना करो, अज्ञान का सामना करो और उनको काबू में लाओ। तब तुम देखोगे कि वे सारी विपत्तियाँ और कठिनाइयाँ गायब हो गयी हैं, तुम पर उनका कोई प्रभाव भी नहीं पड़ा है"।

उन दिनों वाराणसी में बाबू प्रमदादास मित्र नाम के एक महान् संस्कृत भाषा के पंडित रहते थे। दूसरी बार स्वामीजी जब वाराणसी आये तब उनसे मिले। श्रीरामकृष्ण के अन्यतम शिष्य स्वामी अखण्डानन्द जी के माध्यम से वे स्वामी विवेकानन्द से परिचित हुए। स्वामीजी तथा बाबू प्रमदादास धीरे-धीरे एक दूसरे के घनिष्ठ मित्र बन गये। हिन्दू समाज की जटिल समस्याओं के

समाधान के विषय में विस्तृत जानकारी के लिए स्वामीजी बाबू प्रमदादास से बराबर पत्र-व्यवहार करते रहे।

सन् १८८८ ई० में उत्तराखण्ड के तीर्थों की यात्रा समाप्त कर स्वामीजी वाराहनगर मठ में वापस आये। मठवासियों के लिए उन्होंने वेदान्त के अध्ययन की व्यवस्था की। परन्तु मठ में पैसे की कमी थी। पुस्तकें खरीदना असम्भव था। अतः स्वामीजी ने वेदान्त की पुस्तकें बाबू प्रमदादास से उधार माँगी, साथ ही एक पाणिनि व्याकरण, ताकि उनके गुरुभाई संस्कृत भाषा में पारंगत होकर वेदान्त का अध्ययन सरलता से कर सकें।

मठ में रहते समय स्वामीजी का मन बाबा विश्वनाथ की नगरी काशी की ओर बराबर आकृष्ट होता रहा। यहाँ प्रमदादास बाबू की उपस्थिति भी उनके लिए लाभकर थी।

सन् १८८९ ई० के दिसम्बर के अन्त में स्वामीजी वैद्यनाथ धाम गये। वहाँ से वाराणसी आने वाले थे। वैद्यनाथ धाम से स्वामीजी ने लिखा था, "मेरा कुछ दिनों तक वाराणसी में रहने का विचार है। देखें, बाबा विश्वनाथ और मां अन्नपूर्णा मेरे जैसे व्यक्ति के लिए कैसी व्यवस्था करती हैं। मैं यह निश्चय कर चुका हूँ कि वहाँ रहकर या तो मैं अपने लक्ष्य की पूर्ति करूँगा, नहीं तो प्राणों की आहुति चढ़ा दूँगा। अब काशीश्वर ! तेरा ही सहारा।"

वैद्यनाथ धाम से काशी आकर स्वामीजी अपने मित्र प्रमदादास के साथ रहने लगे। उनके साथ सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक विषयों पर घंटों बातचीत होती थी।

कुछ दिनों बाद हिमालय की बर्फीली चोटियाँ स्वामीजी को पुकारने लगी। अतः स्वामीजी अधिक दिनों तक वाराणसी में नहीं रह सके। बाबू प्रमदादास से विदा लेते समय स्वामीजी ने कहा — "जब मैं फिर वापस यहाँ लौटूँगा तब समाज में मैं बम की तरह विस्फोट पैदा करूँगा। समाज मेरे पीछे-पीछे चलेगा।"

प्राचीन भारतीय महात्माओं ने मानवात्मा की एकात्मता तथा उसमें अन्तर्निहित ईश्वरत्व का अनुभव किया था। स्वामीजी ने यही दिव्य सन्देश सुनाकर पूरे विश्व को आन्दोलित किया। इसके बाद ही स्वामीजी पुनः काशी आये।

सन् १८९० ई० में वाराहनगर मठ में श्रीरामकृष्ण के शिष्य वर्ग को आर्थिक कठिनाई का सामना करना पड़ा। उस समय वह आश्रम प्रारम्भिक अवस्था में था। इधर स्वामीजी को एक और चिन्ता सता रही थी। वे श्रीरामकृष्ण के जन्म-स्थान तथा साधनापीठ बंगाल में, उनकी स्मृति को जीवित रखने के लिए कुछ करना चाहते थे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए गंगा तट पर उनके नाम से स्वामीजी एक भव्य मंदिर की स्थापना करना चाहते थे। इस सम्बन्ध में बाबू प्रमदादास के नाम लिखे गये स्वामीजी के एक पत्र से कुछ उद्धरण दिये जा रहे हैं। यह पत्र दिनांक २६ मई १८९० ई० को लिखा गया था। इस पत्र से स्पष्ट हो जाता है कि अपने गुरु-भाइयों के प्रति स्वामीजी का कितना असीम प्रेम था !

इस पत्र के द्वारा स्वामीजी ने प्रमदादास बाबू से यह आग्रह किया था कि वे अपने वाराणसी निवासी मित्रों से चन्दा इकट्ठा करें और उक्त स्मृति-मंदिर बनाने में सहायक हों। पत्र में आगे लिखा था — मैं श्रीरामकृष्ण का दास हूँ। प्रभु के जन्म-स्थान तथा साधनापीठ में प्रभु की स्मृति को सदा जाग्रत रखने के लिए तथा उनके शिष्यों के त्यागमय एवं सेवामय जीवन में थोड़ी-सी सहायता पहुँचाने के लिए यदि मुझे चोरी और डकैती भी करनी पड़े तो वह भी मुझे स्वीकार है। प्रभु के

जन्म-स्थान और साधनापीठ में यदि उनका एक स्मृति-मंदिर भी न बन सका तो यह बड़े दुःख का विषय होगा। बंगाल की स्थिति दयनीय है। यहाँ के लोग यह कल्पना नहीं कर पाते कि त्याग किस वस्तु का नाम है। केवल सुखोपभोग, कामुकता और स्वार्थपरायणता इस जाति के जीवन में घर कर गयी है और ये सब इस जाति की प्राणशक्ति को कुतरती जा रही है। भगवान इस भूमि में त्याग की भावना को जगाए,—यही मेरी कामना है।"

एक बार स्वामीजी ने स्वामी अभेदानन्दजी को लिखा कि वे स्वास्थ्य सुधारने के लिए वाराणसी में आकर रहें; इससे वे जलवायु परिवर्तन का लाभ उठा सकेंगे। स्वामीजी ने प्रमदादास बाबू से पत्र द्वारा यह अग्रह किया कि वे स्वामी अभेदानन्द की देखभाल करें। लम्बी बीमारी के कारण बाध्य होकर स्वामी अभेदानन्द जी को अन्त में वाराणसी आना पड़ा। इधर स्वामीजी की तपस्या करने की आन्तरिक इच्छा थी। अतः वे भी काशी आये और प्रमदादास बाबू के यहाँ ठहरे। स्वामी अभेदानन्दजी की देखभाल की पूर्ण व्यवस्था कर लेने के बाद स्वामीजी ने प्रमदादास बाबू के बगीचे में अपना आसन जमाया। यहाँ उनका पूरा समय ध्यान धारणा में बीतने लगा। इसी बीच एक दिन स्वामीजी को श्री बलराम बोस के निधन का हृदयविदारक समाचार मिला। बलराम बोस श्री रामकृष्ण के प्रिय शिष्यों में से थे। इस दुखद समाचार से स्वामीजी को भयंकर चोट पहुँची। मृत्यु के समाचार से एक संन्यासी को इतना विचलित होते देख प्रमदादास बाबू को बड़ा आश्चर्य हुआ। परन्तु स्वामीजी बोले—"क्या मैं संन्यासी हुआ तो मुझे अपना हृदय भी त्यागना पड़ेगा ? हम "सूखे" संन्यासी नहीं हैं।" बलराम बाबू के शोकसंतप्त परिवार को सान्त्वना देने के लिए स्वामीजी वाराणसी से कलकत्ता चले गये।

फरवरी सन् १९०२ ई० में स्वामीजी अन्तिम बार वाराणसी आये। इस बार काशी के नागरिकों ने उनका स्वागत बड़ी धूमधाम से किया। इस बार स्वामीजी राजा काली कृष्ण ठाकुर के यहाँ सम्मानित अतिथि के रूप में ठहरे। स्वामीजी के साथ जापान के श्री ओकाकुरा भी आये थे। स्वामीजी के स्वागत की व्यवस्था ठीक करने लिए स्वामी निरंजनानन्द, स्वामी शिवानन्द, स्वामी बोधानन्द तथा स्वामी निर्भयानन्द पहले से ही यहाँ आये थे। कई विशिष्ट व्यक्ति स्वामीजी से मिले। उनमें कुछ महन्त और निष्ठावान पंडित भी थे। उन्होंने विभिन्न सामाजिक समस्याओं पर स्वामीजी से बात-चीत की। स्वामीजी ने इन सभी समस्याओं के समाधान प्रस्तुत किये तथा हिन्दू संस्कृति के सुधार के लिए स्वामीजी ने जो विचार प्रकट किये, इन लोगों ने उन सबकी सराहना की। एक पुरातात्विक अन्वेषण के दृष्टिकोण से स्वामीजी ने कहा—"प्राचीनतम प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि वाराणसी शिवोपासना का श्रेष्ठ स्थान है।"

इन्हीं दिनों धर्मात्मा तथा दयावान् भिनगा नरेश महाराजा उदय प्रताप सिंह स्वामीजी से मिले। वे अपने दुर्गाकुण्ड स्थित बाग में संन्यास-जीवन व्यतीत कर रहे थे। उनका संन्यास 'गृह संन्यास' था। उन्होंने बाग के बाहर न जाने की प्रतिज्ञा कर ली थी। जब उनको पता चला कि स्वामीजी वाराणसी पधारे हैं तब उनसे मिलने की उनकी तीव्र इच्छा हुई। प्रतिज्ञा के बावजूद उन्होंने स्वामीजी के निवास स्थान पर आने का निश्चय किया। इसी बीच यह समाचार स्वामीजी को एक ऐसे साधु के द्वारा प्राप्त हुआ जो राजा साहेब के सन्देशवाहक थे। दूसरे ही दिन स्वामीजी स्वयं राजा साहेब के बाग में गये और उनसे मिले। राजा साहब के आनन्द की परिसीमा न रही। फिर, दोनों साथ बैठकर बहुत देर तक विभिन्न विषयों पर बात-

चीत करते रहे। राजा साहब ने स्वामीजी से प्रार्थना की कि वे इस पवित्र नगरी में कुछ कार्य प्रारम्भ करें। इस उद्देश्य से उन्होंने स्वामीजी को ५०० रु० दिये। कुछ समय पश्चात् स्वामीजी ने स्वामी शिवानन्द को वेदान्त मत के प्रचारार्थ कुछ कार्य प्रारम्भ करने के लिए निर्देश दिया। इस प्रकार वाराणसी में "रामकृष्ण अद्वैत आश्रम" का श्रीगणेश हुआ।

स्वामी सदाशिवानन्द ने अपने संस्मरण में लिखा है—सन् १९०२ ई० में स्वामी विवेकानन्द गोपाल लाल विला में रहते थे। यह स्थान सेवाश्रम से ५ मील दूर था। हम नित्य स्वामीजी के दर्शन के लिए जाया करते थे। कभी रात में वहीं ठहर जाते थे। एक दिन स्वामी शिवानन्दजी ने मेरी अनुपस्थिति में स्वामीजी से आग्रह किया कि वे हम सबको दीक्षा दें। स्वामीजी राजी हुए, परन्तु उन्होंने कोई दिन निश्चित नहीं किया। एक दिन रात में स्वामीजी ने ठहर जाने के लिए कहा। उसके दूसरे दिन दीक्षा के लिए निश्चित हुआ था। सबेरे हम नहाकर दीक्षा के लिए तैयार हुए। फिर, हम स्वामीजी के द्वार पर प्रतीक्षा में बैठे। हमारी आशा से पहले ही द्वार खुला। स्वामीजी सामने खड़े थे, उनके मुखमण्डल पर दिव्य ज्योति जगमगा रही थी। आवेगपूर्ण स्वर में उन्होंने कहा—"एक-एक करके तुम लोग आओ।"ज्योंही मैं उनके पास गया, उन्होंने कहा--अच्छा ! तो तुम ही पहले आये ? आओ बेटा मेरे साथ आओ" हम एक दूसरे कमरे में गये। फर्श पर दो गलीचे के आसन बिछे हुए थे। एक पर स्वामीजी बैठे और दूसरे पर मैं। कुछ ही मिनटों में स्वामीजी गहरी समाधि में लीन हो गये। कुछ देर बाद पुनः स्वाभाविक जाग्रत अवस्था में आये। मुझसे उन्होंने कहा—"मेरे बारे में सोचो"। मैंने ऐसा किया। अब श्री रामकृष्ण का स्मरण करो और मुझको उनमें विलीन कर दो" "मेरी दीक्षा सम्पन्न होने के बाद स्वामीजी ने दूसरे दीक्षार्थी को भेजने के लिए कहा। मैंने बाहर आकर चारु बाबू (स्वामी शुभानन्द) को भेजा। उनकी भी दीक्षा उसी प्रकार सम्पन्न हुई। श्री हरिदास चटर्जी बाद में भेजे गये।

"हमारे सेवक-दल में दुबला पतला एक बालक था। इस पर स्वामीजी की निगाह पड़ी। इस बालक के उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि सब पर स्वामीजी कि कितनी दया थी। यह बालक बहुत ही दुर्बल था एक दिन वह स्वामीजी के दर्शन के लिए गया। स्वामीजी ने उससे हालचाल पूछा और प्रतिदिन अपने साथ भोजन करने के लिए कहा। उन्होंने कहा—मेरे बच्चे, तुम बड़े कमजोर हो। तुम्हें सेवाश्रम में काम करना है। तुमको अच्छा भोजन मिलना चाहिए। तुम नित्य मेरे साथ भोजन किया करो। कम से कम दोपहर का खाना मेरे साथ खाया करो।"

इन्हीं दिनों बाबा केदारनाथजी के मंदिर में श्रद्धेय वयोवृद्ध महन्तजी ने स्वामीजी और उनके साथियों को एक दिन अपने यहाँ भिक्षा ग्रहण करने का निमंत्रण दिया। स्वामीजी ने निमंत्रण स्वीकार किया। दूसरे दिन प्रातः दस बजे स्वामीजी स्वामी शिवानन्द तथा अन्य भक्तों के साथ महन्तजी के निवास-स्थान पर गये। महन्तजी ने इन लोगों को दिव्य भोजन कराया। भोजन के बाद महन्तजी ने एक केसरिया वस्त्र स्वामीजी के गेरुआ वस्त्र के उपर से पहना दिया। फिर, एक केसरिया चादर भी स्वामीजी के कन्धों पर डाल दी। उन्होंने कहा, "आज मैंने एक सच्चे 'दंडी' (वदान्ती) संन्यासी को भोजन कराया। आप शिव के अवतार हैं। आपने मनुष्य समाज की मुक्ति के लिए जन्म लिया है।" महन्तजी के आग्रह करने पर स्वामीजी तथा अन्य साथी बाबा केदारनाथजी के मंदिर में गये। यद्यपि वह आरती का समय नहीं था, फिर भी, बाबा केदार नाथ की विशेष आरती उतारी गयी।

स्वामीजी गहरी समाधि में लीन हो गये। ऐसा मालूम हो रहा था मानो वहाँ के सभी लोग उनकी दिव्य उपस्थिति से प्रभावित हो गये। धीरे-धीरे सभी लोग बाहर आये। स्वामीजी स्वाभाविक स्थिति में आ गये। फिर, सभी लोग काली कृष्ण के मकान में आये।

स्वामीजी उन दिनों अस्वस्थ थे। एक स्थानीय डाक्टर उनकी चिकित्सा कर रहे थे। यह डाक्टर महाशय प्राय: स्वामीजी के पास आते थे और एक विशेष धर्ममत के बारे में बात-चीत करते थे। यह धर्ममत देश में हाल में ही चालू हुआ था। वह सज्जन इस धर्ममत के प्रवर्तक तथा देश के लिए इस धर्म की सेवाओं के बारे में वे सिर पैर की प्रसंशा कर रहे थे। स्वामीजी ने बिना कोई मत व्यक्त किये निर्विरोध भाव से उनकी बातें सुनीं। परन्तु जब वे सज्जन सीमा के बाहर जाने लगे तब स्वामीजी ने गंभीर होकर दृढ़ स्वर में कहा—"विदेशी लोग इस देश में विज्ञानादि हर विषय के शिक्षक बने हुए हैं। केवल धर्म ही छूटा हुआ था। परन्तु आप उन विदेशियों को इस विषय में भी श्रेष्ठता देना चाहते हैं। आपने योरोप को गुरु मान लिया है और उसके सम्मोहित दास मात्र हैं। क्या आपके विचार से भारत इतना गिर चुका है कि उसके लिए धार्मिक अनुष्ठान भी बाहरी देशों से मँगाना पड़ेगा ? क्या यह गर्व का विषय है ? या ऐसे धार्मिक अनुष्ठान अपनाने में आपको लज्जा होनी चाहिए ? मैं यहाँ भाषण देकर प्रशंसा पाने के लिए नहीं आया हूँ। अस्वस्थ हूँ और विश्राम तथा शान्ति चाहता हूँ यदि मैं चाहूँ तो आज ही रात में तुम्हारे प्रिय धर्ममत के प्रवर्तक तथा सारे बनारस को अपने पैरों तले खींच ला सकता हूँ। परन्तु मैं दैवी शक्ति का अपव्यय इस प्रकार से नहीं करना चाहता। अत: ऐसा मैंने नहीं किया"। अभी कुछ ही क्षण पहले डाक्टर साहब स्वामीजी को आध्यात्मिक शक्ति के विषय में साधारण स्तर से ऊपर नहीं मानना चाहते थे। परन्तु अब हार्दिक दु:ख प्रकट करते हुए तथा लज्जित होकर बातचीत का विषय बदल दिया। क्षण भर में ही स्वामीजी शान्त हो गये।

इन दिनों प्रसिद्ध देशसेवक श्री केलकर वाराणसी में रहते थे। एक दिन शाम को वे स्वामीजी से मिलने आये। स्वामीजी उस समय बहुत अस्वस्थ थे। वे बिछौने पर लेटे हुए थे। जिस प्रकार व्यक्ति अपने गुरु का सम्मान दिखाता है, ठीक उसी प्रकार श्री केलकर ने स्वामीजी को सम्मान दिया। फिर, वे एक आसन पर बैठ गये। अंग्रेजी में देर तक बातें होती रहीं। भारत तथा उसकी दुर्दशा, राजनीति, सामाजिक सुधार तथा अन्य अनेक विषयों पर बातचीत हुई। स्वामीजी ने यह कह कर आन्तरिक दु:ख प्रकट किया,—"इस प्रकार की अवनति और भीषण दरिद्रता की हालत में भारत को जीवित रहने से क्या लाभ है ? क्षण क्षण में वह असहनीय दु:ख भोग रहा है। न अन्न है न वस्त्र। अपमान और दुर्दशा इसके साथी हैं। केवल उसका श्वासोच्छ्वास मन्द गति से चल रहा है। वही एक मात्र उसके जीवन का लक्षण है। नरक की अग्नि में मानो वह धीरे-धीरे जलकर निश्चित विनाश को प्राप्त कर रहा है। क्या इससे अच्छा यह न होगा कि वह धरती पर से पूर्णरूपेण विलुप्त हो जाय ? अन्त में उन्होंने श्री केलकर से कहा—"दूसरे देश के प्राणहीन राजनीतिक अन्धानुकरण से हमें कोई लाभ नहीं होगा, न हमें उससे कोई सहायता मिलेगी। प्राचीन परम्पराओं के आधार पर भारत के अन्दर से जो स्वत: स्फूर्त विकास होगा, उसी से भारत का अभ्युत्थान हो सकेगा।" श्री केलकर स्वामीजी की बातचीत से काफी प्रभावित हुए और स्वामीजी को भक्ति भाव से प्रणाम करते हुए विदा ली।

कुछ दिनों पहले की बात है। स्वामीजी द्वारा विरचित "सखा के प्रति" शीर्षक कविता पढ़ने के बाद काशी के कुछ युवकों के मन पर उसका गहरा प्रभाव पड़ा।

स्वामीजी की इस प्रेरणा से अनुप्राणित होकर उक्त युवकों ने एकत्र होकर विचार विमर्श करना प्रारम्भ किया कि किस ढंग से स्वामीजी की शिक्षाओं को व्यावहारिक रूप दिया जाय। योग्य अवसर भी प्राप्त हुआ। एक दिन उनमें से एक युवक ने देखा कि एक बुढ़िया सड़क के किनारे पड़ी हुई और सहायता के लिए चिल्ला रही है। युवक ने बुढ़िया को उठाकर एक मकान के छज्जे के नीचे रखा। एक सज्जन ने बुढ़िया को दूध पिलाने के लिए चार आने पैसे दिये। दूध पीकर जब बुढ़िया स्वस्थ हुई तब युवक ने उसे सरकारी अस्पताल में भर्ती करा दिया। वहाँ कुछ दिनों में वह स्वस्थ हो गयी। इस सेवा कार्य से युवक को एक विशुद्ध आनन्द की अनुभूति हुई। वह अपने साथियों के साथ अनाथ, असहायों की सेवा में लग गया। रोगियों को रखने के लिए उसने किराए पर एक छोटा मकान लिया। मानवीयतापूर्ण यह सेवा कार्य देख सहृदय जनता आकृष्ट हुई। इन युवकों ने दि पूअर मेन्स रिलीफ एसोसियेशन (दरिद्रत्राण समिति) के नाम से एक समिति की स्थापना की जिसका कार्य था— स्थानीय पीड़ितों तथा पीड़ित यात्रियों की सेवा करना। इन युवकों में प्रमुख थे— यामिनी बाबू, चारु बाबू (बाद में स्वामी शुभानन्द) तथा श्री केदारनाथ (बाद में स्वामी अचलानन्द)। कार्य धीरे-धीरे बढ़ने लगा। सन् १९०० ई० में जंगम बाड़ी में एक बड़ा मकान किराये पर लिया गया। फिर, सन् १९०१ में रामापुरा में स्थित उससे भी बड़े एक मकान में समिति स्थानान्तरित की गयी। फरवरी सन् १९०२ में जब स्वामीजी वाराणसी आये तब युवकों का दल स्वामीजी से उपदेश तथा निर्देश प्राप्त करने के लिए मिला। स्वामीजी उनके कार्य से बहुत आनन्दित हुए। उन्होंने कहा, "मेरे बच्चे, यही यथार्थ मानव धर्म है, तुमने ठीक रास्ते को पहचाना हैं। मेरा स्नेह तथा आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ है। निर्भीकता से बढ़ते जाओ। धन के लिए चिन्ता न करो। धन आएगा ही। समय आने पर यह प्रतिष्ठान इतना विकसित होगा कि तुम अभी सपने में भी कल्पना नहीं कर सकते।"

संस्था के नाम के सम्बन्ध में उन्होंने आगे कहा— "त्राण करनेवाले तुम कौन होते हो? क्या कोई किसी का त्राण कर सकता है? सेवा के अतिरिक्त तुम्हारे अधिकार में और कुछ है ही नहीं। मेरे बच्चे, अपनी संस्था का नाम सेवाश्रम रखो। गरीबों की सेवा के लिए जो चन्दा एकत्रित होगा, उसका एक-एक पैसा अपने शरीर का खून समझना। ऐसा महान कार्य ठीक प्रकार से तथा स्थायी रूप से चलाना केवल उन्हीं के लिए सम्भव है जिन्होंने अपने स्वार्थी विचारों को तिलांजलि दे दी है।"

तीन हफ्ते ठहरने के बाद स्वामीजी बेलुड़ मठ के लिए रवाना हो गये। जाने से पहले सेवाश्रम की ओर से जनता के प्रति एक आवेदन-पत्र लिखवाया।

इन नवयुवकों के कार्य से स्वामीजी इतना प्रभावित हुए कि बेलुड़ मठ में लौटने के बाद उन्होंने अपने गुरुभाई स्वामी ब्रह्मानन्दजी से अनुरोध किया कि वे इस संस्था के प्रति सदा ध्यान रखें।

बस, स्वामीजी अपने भौतिक शरीर में वाराणसी में इसके बाद फिर नहीं आये! □

अल्मोड़ा में स्वामी विवेकानन्द

डॉ० उषा वर्मा
रीडर, हिन्दी विभाग
जगदम कॉलेज, छपरा

[प्रस्तुत लेख की रचना रामकृष्ण कुटीर, अल्मोड़ा से प्रकाशित 'Swami Vivekananda's three visit to Almora'' नामक पुस्तिका के आधार पर की गयी है।—लेखिका]

मंजिल तक ले जानेवाली यात्रा शुभ है, यात्रा का उद्देश्य उजागर करनेवाला पड़ाव सार्थक। इस अर्थ में स्वामी विवेकानन्द की अल्मोड़ा यात्रा सार्थक भी रही है और शुभ भी। देश-विदेश की विविध यात्राओं की तुलना में उनकी अल्मोड़ा यात्रा कई अर्थों में विशिष्ट रही है। इस यात्रा-प्रक्रिया में स्वामी विवेकानन्द और अल्मोड़ा दोनों ने एक दूसरे को कुछ विशिष्ट दिया है। दोनों ने एक दूसरे से कुछ विशिष्ट पाया है। स्वामीजी की साधना-भूमि होने के कारण उनके भक्तों और अनुयायियों के लिए अल्मोड़ा तीर्थ बन गया है।

नरेन्द्रनाथ को स्वामी विवेकानन्द बनाने में अल्मोड़ा ने अपनी अहम भूमिका निभायी है, संत भाव जाग्रत करने के लिए अल्मोड़ा का आकाश कुछ अधिक ही अनुकूल है। अल्मोड़ा से ३२ मील उत्तर कौसानी में जनमे और अल्मोड़ा में पले-बढ़े हिन्दी के मूर्धन्य कवि सुमित्रानन्दन पंत को 'कवियों में सौम्य संत' बनाने का बहुत बड़ा श्रेय अल्मोड़ा को ही है।

ऋषियों की तपः पूत भूमि अल्मोड़ा के प्रति अपने उद्गार व्यक्त करते हुए कवि पंत ने उसके प्राकृतिक ऐश्वर्य और आध्यात्मिक गौरव को यों रेखांकित किया है—

"यह भौतिक ऐश्वर्य शुभ्र गरिमा से मन को छूकर।
नीरव आध्यात्मिक विस्मय से अंतर को देता भर।"

समुद्र की सतह से लगभग ५००० फीट की ऊँचाई पर स्थित उत्तर प्रदेश के उत्तरी भाग का यह छोटा-सा शहर अपनी प्राकृतिक सम्पदा से सम्पन्न है। चीड़ और देवदार के वृक्षों से आवेष्ठित इसकी पहाड़ियाँ मन-प्राणों को विराटता की ओर उन्मुख करती हैं। वार्षिक वर्षा यहाँ ४५ से ५० इंच होती है। अतः अन्य पहाड़ी स्थानों—नैनीताल, रानी खेत, शिमला, मसूरी या दार्जिलिंग आदि—की तुलना में अल्मोड़ा सूखा है। जलवायु आदर्श है – न अधिक गर्म, न अधिक ठंढा। इसके आसपास लगभग २० आकर्षक चुम्बकीय दर्शनीय स्थान—कमेत, नन्दादेवी और त्रिशूल आदि हैं। केदारनाथ, बद्रीनाथ, कैलाश पर्वत आदि जाने के रास्ते यहाँ से निकलते हैं। पहली बार इस शहर की स्थापना १५६२ ई० में चन्द्राजस नामक राजा की राजधानी के रूप में हुई थी। बाद में इसे नेपाल ने जीत लिया। १८१५ में यह अंग्रेजों के कब्जे में आ गया तो १९४७ में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही स्वतंत्र हुआ।

समय-समय पर विविध हस्तियों के बन्धन में आनेवाला अल्मोड़ा स्वयं भी बाँधता रहा है—अपने निवासियों और अतिथियों को। स्वामी विवेकानन्द भी उसी चुम्बकीय आकर्षण की गिरफ्त में आये थे। उनके पत्रों तथा उनकी जीवनी से उनके तीन बार अल्मोड़ा आने की सूचना मिलती है। यों यहाँ आने की योजना तो उन्होंने कई बार बनायी किन्तु, किसी न किसी कारण से

उनकी यात्रा स्थगित होती रही। १८८६ में श्री रामकृष्ण के लीलावसान के बाद बाराहनगर मठ के उनके युवा शिष्यों ने साधना के लिए कई स्थानों का भ्रमण किया। उनमें से एक स्वामी अखंडानन्द (गंगाधर) ने हिमालय तथा तिब्बत की यात्रा की तथा तीन वर्ष इधर गुजारे। वे पहले शिष्य थे जिन्होंने अलमोड़ा की यात्रा की। वहाँ शहर के एक प्रमुख व्यक्ति लाला बद्री शाह ने उनका भव्य स्वागत सत्कार किया। लालाजी सच्चे भक्त थे। श्री रामकृष्ण के शिष्यों के लिए उनमें आत्मिक लगाव था। फलतः बाद के वर्षों में भी श्री रामकृष्ण के कई शिष्य लालाजी के अतिथि होते रहे।

स्वामी विवेकानन्द ने पहली बार १८९० में अलमोड़ा की यात्रा की थी। तब वे नरेन या नरेन्द्रनाथ के नाम से जाने जाते थे। यहाँ आकर हिमालय की कंदराओं में साधना की इनकी योजना बहुत पहले से बन रही थी। १८८८ में कलकत्ता छोड़ने के बाद नरेन हृषीकेश पहुँचे जहाँ से वे हाथरस के अपने प्रथम शिष्य सदानन्द के साथ बद्रीनाथ जाने की योजना बना रहे थे। किन्तु, सदानन्द के अस्वस्थ हो जाने के कारण उन्हें पुनः हाथरस लौट जाना पड़ा। फिर वे अपने संन्यासी साथियों द्वारा बाराहनगर बुला लिये गये। इस बीच उन्हें कई कठिनाइयों और जिम्मेदारियों का सामना करना पड़ा। स्वामी अखंडानन्द के पत्रों से उनके पुनः १८८९ में अलमोड़ा जाने की योजना का पता चलता है। परन्तु इस बार भी नरेन वहाँ नहीं जा सके क्योंकि लम्बी बीमारी के बाद स्वास्थ्य लाभ करके उनके शिष्य सदानन्द आश्रम से आ गये थे। यद्यपि उनकी यात्रा स्थगित हो गयी किन्तु, यात्रा का विचार स्थगित नहीं हुआ। हिमालय में साधना की लालसा उन्हें सदैव अलमोड़ा के लिए प्रेरित करती रही। १८९० के आरम्भ में उन्होंने पुनः यात्रा आरम्भ की। ६ जुलाई को उन्होंने अलमोड़ा स्थित अपने दो संन्यासी भाइयों सारदानन्द तथा वैकुंठानन्द को इस आशय का पत्र लिखा कि वे यथाशीघ्र अखंडानन्द के साथ अलमोड़ा आएँगे तथा फिर लम्बी साधना के लिए गंगा किनारे गढ़वाल के किसी स्थान पर ठहरेंगे। यात्रा आरम्भ करने के पहले उन्होंने अपने गुरुभाइयों से कहा था कि इस बार मैं तब तक नहीं लौटूँगा जब तक मैं साधना की उस ऊँचाई को नहीं छू लूँ कि मेरा स्पर्श किसी व्यक्ति को रूपान्तरित और उद्भासित कर दें।

आज सड़कों में सुधार और यातायात के साधनों से अलमोड़ा की यात्रा सुगम हो गयी है। परन्तु, १८९० में यात्रियों को घोड़ा से, पालकी से या पैदल यात्रा करनी पड़ती थी। स्वामीजी ने तब अखंडानन्द के साथ मात्र छड़ी लेकर यात्रा शुरू की थी। रास्ते में मधुकरी वृत्ति अपनायी। काठगोदाम से पैदल चल कर नैनीताल आये और फिर अलमोड़ा। यात्रा के तीसरे दिन जब वे कोसी नदी पर स्थित काकरो घाट नामक स्थान पर पहुँचे तब एक पीपल के वृक्ष के नीचे बैठ कर अत्यन्त उत्साह से आह्लादित होकर उन्होंने कहा था—"साधना के लिए कितना सुन्दर स्थान है।" यह कहते ही उनका शरीर स्थिर हो गया था। वे गहरी समाधि में डूब गये थे। बहुत देर बाद सामान्य होने पर उन्होंने आन्तरिक प्रसन्नता से कहा था "आह गंगाधर! मैंने अभी-अभी अपने जीवन के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण क्षणों का साक्षात्कार किया है। जीव और ब्रह्म के एकत्व के अनुभव से गुजरा हूँ। अणु में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का दर्शन किया है।" उसके बाद उन्होंने अलमोड़ा तक कुछ नहीं कहा।

अलमोड़ा पहुँचने की अन्तिम चढ़ाई के समय उनके पास खाने-पीने के लिए कुछ शेष नहीं बचा

था। चलते-चलते स्वामीजी भूख और थकावट से बेहोश हो गये। अखंडानन्द पानी की तलाश में निकले। वहाँ एक मुस्लिम कब्रगाह था। उसके प्रभारी फकीर ने इनकी स्थिति देखकर, इनकी ओर खाने के लिए एक खीरा बढ़ाया। स्वामी जी इस हद तक अशक्त हो गये थे कि स्वयं खीरा पकड़ कर खाना कठिन था। उन्होंने फकीर से ही उसे खिला देने को कहा। किन्तु, फकीर ने यह कहते हुए अपना हाथ खींच लिया कि 'मैं मुसलमान हूँ।' उन विकट क्षणों में भी स्वामी जी का प्रत्येक आत्मा में एक ही ब्रह्म के निवास का बोध मंद नहीं पड़ा था। उन्होंने तत्काल कहा "उससे क्या फर्क पड़ता है ? क्या हम सब भाई नहीं हैं ?"

अल्मोड़ा में स्वामीजी ने पहली बार १८९० के अगस्त या सितम्बर में कदम रखा। बद्री शाह के निवास पर पहले से ही दो संन्यासी ठहरे हुए थे। अखंडानन्द के साथ स्वामी जी ने वहीं पड़ाव लिया। उनके वहाँ रहने के दिनों में एक विचित्र घटना घटी। एक दिन बद्री शाह भूत बाधा से पीड़ित एक व्यक्ति को देखने गये। स्वामीजी भी साथ थे। वहाँ उनका गैरिक वस्त्र देखकर भीड़ ने उनसे उस बीमार को स्वस्थ करने का आग्रह किया। स्वामीजी ने कहा "मैं कौन हूँ मेरे भाई ? मैं तो केवल एक संन्यासी हूँ। ईश्वर इनकी रक्षा करेंगे।" किन्तु, भीड़ ने अत्यधिक आग्रह किया। स्वामीजी ने उस बीमार के सिर पर अपना हाथ रखा और वह तत्काल स्वस्थ सामान्य हो गया।

स्वामीजी का मन गहरे ध्यान में जाने के लिए विकल था। अल्मोड़ा जाने का उद्देश्य ही था गहरे ध्यान में निमग्न होना। अतः कुछ दिन बद्री शाह के साथ रहने के बाद स्वामीजी ने पास के एक शांत-एकांत पहाड़ी गाँव की गुफा में ध्यान के लिए प्रस्थान किया। वहाँ गजब की शांति थी। ध्यान के लिए सर्वथा अनुकूल स्थान था वह। किसी ने उन्हें व्यवधान नहीं डाला। किसी ने उनकी साधना भंग नहीं की। वे दिन-रात साधना करते रहे। सर्वोच्च सत्य की प्राप्ति के लिए संकल्पित स्वामी जी को अनुभव-पर-अनुभव होते रहे। साधना के चरम शिखर पर पहुँच कर उन्होंने व्यक्तिगत मोक्ष की अपेक्षा मानवता के लिए कुछ काम करने की आवश्यकता बड़े जोरों से महसूस की। उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा कि कोई शक्ति उन्हें बड़े वेग से साधना के जीवन से बाहर ढकेल रही है। अपने उन दिनों को स्मरण करते हुए बाद में स्वामीजी ने अपने शिष्यों से कहा था कि काम करने की वैसी उत्कट आकांक्षा मैंने तब तक के जीवन में उसके पहले महसूस नहीं की थी। भीतर से कोई बार-बार कह रहा था कि इससे बड़ा काम बाहर पड़ा हुआ है करने को। यह प्रभु की इच्छा थी। स्वामीजी के अन्तःकरण की प्रेरणा थी। कर्मयोग का संदेश था। नरेन्द्रनाथ को स्वामी विवेकानन्द बनाने की पहल थी। अपने भीतर के दबाव से अनुप्रेरित होकर स्वामीजी साधना छोड़कर बाहर आ गये। उनकी इस ऐतिहासिक साधना की गुफा का अभी ठीक-ठीक पता नहीं चल सका है। आसपास की कई गुफाओं के साथ उनकी साधना की चर्चा की जाती है। किन्तु, अनुमान है कि अल्मोड़ा से उत्तर-पूर्व की ओर लगभग पाँच मील दूर कसर देवी पर स्थिर है यह गुफा। अब इसकी स्थिति काफी अच्छी हो गयी है। साधु-संन्यासी इसका पड़ाव के रूप में इस्तेमाल करते हैं।

अपने संन्यासी भाइयों और बद्री शाह के पास अल्मोड़ा लौटकर स्वामीजी ने भारत भ्रमण की इच्छा व्यक्त की। भारत को ठीक-ठीक जानने-पहचानने की उनकी इच्छा बलवती हो चली थी।

जिसके लिए कुछ विशिष्ट, कुछ महत् करने के लिए इन्होंने साधना से विदा ली थी उसे निकट से देखना-जानना अनिवार्य था। अभी भ्रमण की योजना बन ही रही थी कि उन्हें उनकी विधवा बहन की आत्महत्या का तार मिला। वे आहत हुए। महिलाओं, विशेषकर विधवाओं की दयनीय स्थिति से उनके प्राण विकल हो उठे। सभी संन्यासियों के साथ बद्री नाथ की यात्रा आरम्भ की गयी। लगभग एक सौ मील जाने के बाद कभी एक और कभी दूसरे की बीमारी के कारण यात्रा को तिलांजलि देनी पड़ी। वहाँ से वे हृषीकेश पहुँचे। मेरठ पहुँच कर स्वामीजी ने अपने संन्यासी भाइयों से अलग होने का निर्णय लिया ताकि भारत को वे अच्छी तरह समझ सकें। बाद के ढ़ाई वर्षों में वे सम्पूर्ण भारत में जहाँ-तहाँ घूमते रहे। कभी- कभी गुरु भाइयों से मुलाकत भी होती रही।

विदेशों में भाषण-साक्षात्कार आदि के तूफानी कार्यक्रमों ने उन्हें बहुत थका दिया था। देश आने पर जगह-जगह आयोजित स्वागत समारोहों से उनकी थकान और बढ़ती चली गयी। चिकित्सकों की सलाह पर स्वास्थ्य सुधार के लिए मई १८९७ में स्वामी विवेकानन्द ने दूसरी बार अल्मोड़ा की यात्रा की। इस बार उनके साथ कुछ गुरुभाई और शिष्य भी थे। गुडविन और कुमारी मूलर पहले ही जा चुके थे। उनके स्वागत के लिए गुडविन के साथ अनेक प्रशंसक काठगोदाम तक आये। उनकी प्रतीक्षा में लगभग ३००० लोग खड़े थे। उनकी आगे की यात्रा के लिए एक सुसज्जित घोड़ा तैयार रखा गया था। महिलाओं ने उनपर फूल व अक्षत बरसाये थे। बद्री शाह के मकान के पास एक भव्य पंडाल का निर्माण किया गया था। आस-पास के मकान इस तरह सजाये गये थे जैसे कोई त्योहार हो। लोगों ने इन्हें अपने हार्दिक उद्‌गारों का मान-पत्र दिया था। स्वामी जी ने वहाँ दो बार अंग्रेजी तथा एक बार संस्कृत में भाषण किया। अपने स्वागत के लिए आभार व्यक्त करते हुए उन्होंने अल्मोड़ा को पूर्वजों का स्वप्न-देश बतलाया। उसके प्रति आत्मिक आकर्षण की बात कही। यहाँ पहुँच कर त्याग की भावना से ओतप्रोत अपनी वर्त्तमान मनःस्थिति की चर्चा की। त्याग की महिमा का वर्णन किया। हिमालय से वैराग्य और त्याग के पुराने संबंध की चर्चा की। यह भविष्यवाणी भी की कि एक दिन संसार के सभी स्थानों से लोग इसकी ओर आकर्षित होंगे। सभी सशक्त आत्माएँ यहाँ आयेंगी। यहाँ पहुँच कर सभी प्रकार की लड़ाइयाँ—चाहे धार्मिक हों या अन्य—समाप्त हो जायँगी। सम्पूर्ण मानव समुदाय को यह सत्य बोध यहीं होगा कि संसार में एक ही धर्म है और वह है सबके भीतर एक ही ब्रह्म के होने का एहसास? ईश्वर पूजा और ईश्वर में आस्था के अतिरिक्त शेष सभी बातों की निरर्थकता का बोध संसार को यही हिमालय करायेगा। हिमालय हमारी धार्मिक और सांस्कृतिक चेतना का रक्षक रहा है और पोषक भी। यदि हिमालय को धार्मिक भारत से पृथक कर दिया जाय तो हमारे पास बहुत कम रह जायेगा। उन्होंने यहाँ एक आश्रम की स्थापना की इच्छा व्यक्त की। यह विश्वास भी व्यक्त किया कि एक-न-एक दिन मेरी इच्छा पूरी होगी। अपने जीवन के अंतिम दिन यहीं व्यतीत करने की उनकी अभिलाषा ने श्रोताओं को झंकृत कर दिया। उन्होंने हिन्दू धर्म की खूबियों के प्रति लोगों के मन में आस्था बरकरार रहने का आशीष देते हुए ईश्वर से सबके मन की शुद्धि की प्रार्थना की।

अल्मोड़ा में अपने ढाई महीने के प्रवास में इस बार भी स्वामीजी अपने पुराने मित्र बद्री शाह का आतिथ्य स्वीकार किया। यहाँ उन्होंने घुड़-सवारी की। सूर्योदय के मनोहर दृश्य देखे। बर्फीली चोटियों की सुषमा का आनन्द लिया। धीरे-धीरे

उनके स्वास्थ में सुधार होने लगा। कुमारी मूलर द्वारा बनाये गये पाश्चात्य ढंग के भोजन ने भी स्वास्थ्य-सुधार में मदद की। अल्मोड़ा के अंग्रेजों ने उन्हें इंगलिश क्लब में भाषण देने के लिए आमंत्रित किया जहाँ आत्मा से संबंधित विभिन्न प्रश्नों के उत्तर के लिए उन्होंने पूर्व और पश्चिम के विविध दृष्टिकोणों की चर्चा की। अल्मोड़ा इंटर कालेज में भी उनके दो व्याख्यान हुए। यहाँ के लोगों के विशेष अनुरोध पर उन्होंने वैदिक शिक्षा के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक पक्ष पर पहली बार हिन्दी में व्याख्यान दिया। जुलाई के अंत में उन्होंने अल्मोड़ा छोड़ने की तैयारी कर ली। मानव कल्याण से सम्बद्ध ढेर-सारे कार्य उनकी प्रतीक्षा में थे।

तीसरी और अन्तिम बार अल्मोड़ा में स्वामी जी १८९८ में आये। अब तक इनके अनक विदेशी शिष्य भारत आ चुके थे। श्री एवं श्रीमती कैप्टन सेवियर ग्रीष्म ऋतु में अल्मोड़ा आ गये। यहाँ उन्होंने बद्री शाह का बड़ा मकान 'थामसन हाउस' किराया पर लिया और स्वामीजी से यहाँ आने और कुछ दिन ठहरने का अनुरोध किया। प्रस्तावित अद्वैत आश्रम के लिए उपयुक्त स्थान की तलाश जारी थी।

स्वामीजी ने कैप्टन दम्पति का आग्रह इसलिए स्वीकार लिया कि उन्हें ग्रीष्म ऋतु में गर्मी से अपने विदेशी मित्रों अनुयायियों के बीमार पड़ने की आशंका थी। अल्मोड़ा जाकर इससे बचा जा सकता था। फिर अल्मोड़ा के लिए उनके मन में एक गहरा आग्रह-भाव तो था ही। फलतः अपने दल के साथ, जिसमें निवेदिता, श्रीमती ओलेबुल, कुमारी मैक्लॉयड, कंसल जनरल श्री पैटर्थन की पत्नी, दो संन्यासी भाई निरंजानन्द और तुरीयानन्द के अतिरिक्त दो शिष्य सदानन्द और स्वरूपानन्द भी थे। स्वामी जी ने ११ मई १८९८ को कलकत्ता से अल्मोड़ा के लिए प्रस्थान किया। अल्मोड़ा पहुँच कर स्वामीजी तथा अन्य संन्यासी थॉमसन हाउस में श्री और श्रीमती कैप्टन सेवियर के अतिथि हुए। निवेदिता तथा अन्य लोगों ने एक पश्चिमी मित्र के ओकले हाउस में पड़ाव लिया।

तब स्वामीजी अपनी तेजस्विता के शिखर पर थे। इनके इर्द-गिर्द भक्तों की भारी भीड़ थी। उन्हें सुनने के लिए देशी-विदेशी श्रोताओं में गजब की ललक थी। कई लोग उनका शिष्य होना चाहते थे। उन्हीं में से एक सिस्टर क्रिस्टीन भी थीं, जिन्होंनें आजीवन उनकी शिष्या बन कर भारत की सेवा की। स्वामीजी अपने इन अनुयायियों को भारतीय धर्म, सभ्यता, संस्कृति, धार्मिक कथाओं, मिथकों, प्रतीकों और इतिहास आदि से परिचित करा रहे थे। प्रत्येक सुबह संन्यासियों के साथ टहलने के पश्चात् ओकले हाउस में नास्ता करना और उक्त विषयों पर वृहत चर्चा करना उनकी दिनचर्या थी। सिस्टर निवेदिता ने इन चर्चाओं के सम्बन्ध में अपनी पुस्तक 'नोट्स ऑफ सम वांडरिग विथ द स्वामी विवेकानन्द' में विस्तार से लिखा है। कई लोगों के साथ स्वामी जी के साक्षात्कार तथा प्रश्नोत्तर हुआ करते थे। इसी प्रसंग में एक दिन भारतीय थियोसॉफिकल आन्दोलन की तब की नेता श्रीमती एनीबीसेंट 'थामसन हाउस' में चाय पर आमंत्रित थी। एक बार बंगाली साधु और देशभक्त अश्विनी दत्त भी आये थे। इन वार्तालापों में विवेकानन्द के स्वतंत्रता सम्बन्धी विचार अपनी पूरी ओजस्विता के साथ मुखरित हुए थे—"क्या आप सोचते हैं कि मात्र प्रस्ताव पारित कर लेने से स्वतंत्रता की प्राप्ति हो जायेगी ? मेरा इसमें विश्वास नहीं है। इसके लिए जन-जागरण अपेक्षित है। उन्हें भरपेट भोजन देने की आवश्यकता है। तभी वे अपनी गुलामी से बाहर आ सकते हैं।"

अभी तक अकेले रहने के पुराने विचार उनकी चेतना में कभी-कभी जोर पकड़ लेते थे। इसी क्रम में उन्होंने अल्मोड़ा से पश्चिम की ओर कुछ मील दूर स्थित सिया देवी नामक जंगलों से घिरी हुई चोटी की दिशा में प्रस्थान किया था। तीन दिनों तक वहाँ रहने के बाद लौट कर उन्होंने अपने पूर्वज संन्यासियों के दृढ़ व्यक्तित्व और हर मौसम को आसानी से झेलने की उनकी शक्ति की चर्चा की थी। तभी उन्हें गुडविन के देहान्त की सूचना मिली। कुमारी मैकलिऑड के अनुसार इस सूचना के बाद स्वामी जी ने काफी समय थॉमसन हाउस के सामने खड़े बर्फीली चोटियों की ओर शांत भाव से देखते हुए कहा था—'सार्वजनिक सभाओं के मेरे दिन अब समाप्त हो गये।' उसी रात उन्होंने "उसे शांति में विश्राम मिले' (Requiescat In Peace) शीर्षक कविता लिखी, जिसे बाद में गुडविन की माँ को भेज दी। उन्होंने गुडविन को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा था कि "मैं उनका कर्ज नहीं उतार सकता। मेरे विचारों का प्रकाशन गुडविन के अथक तथा स्वार्थ रहित परिश्रम से भी संभव हो सका है।"

स्वामीजी ने अपने मित्रों के साथ कश्मीर जाने का निर्णय लिया। ११ जून १८९८ को अल्मोड़ा छोड़ने के समय एक महत्त्वपूर्ण घटना घटी। मद्रास से प्रकाशित होनेवाली अंग्रेजी पत्रिका 'प्रबुद्ध भारत' के सम्पादक की मृत्यु हो गयी तथा उस पत्रिका को पुनः अल्मोड़ा से प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया। स्वामी स्वरूपानन्द इसके नये सम्पादक नियुक्त किये गये। कैप्टन सेवियर ने प्रबन्धक के रूप में कार्य-भार सम्भाला। इससे सम्बद्ध सभी आर्थिक बोझ वहन करने की जिम्मेदारी भी ली। मार्च १८९९ में अल्मोड़ा से ५५ मील दूर स्थित मायावती में इसके प्रकाशन केन्द्र के स्थानान्तरण के पूर्व तक यह पत्रिका अल्मोड़ा के उसी स्थान से प्रकाशित होती रही जहाँ सेवियर और स्वरूपानन्द ने अद्वैत आश्रम बनाने का स्वप्न देखा था।

आज नगर के पश्चिम में ऊंचाई पर स्थित तुरीयानन्द द्वारा १९१६ में निर्मित आश्रम के चारों तरफ अनेक प्रकाश-स्तम्भ हैं। अनेक भवनों का निर्माण हो चुका है। साधु-संन्यासियों का आना जाना लगा रहता है। यह आश्रम ध्यान के लिए जीवित प्रतीक हैं। स्वामीजी का साकार सपना है यहाँ। इसके पास ही पादप शरीर विज्ञान तथा कृषि शोध संस्थान की स्थापना हो चुकी है जिसे विवेकानन्द प्रयोगशाला के नाम से जाना जाता है। इसका आरम्भ स्वामी विवेकानन्द के प्रथम शिष्य सदानन्द ने किया था। आश्रम तथा शोधशाला के बीच में अनेक स्मृतियों को समेटे थॉमसन हाउस स्थित है। फर्क यही है कि अब उसके मालिक कोई और हैं और उसका नाम बदल कर 'द एवोकाडो' (The Avocado) हो गया है।

वेदान्त 'पाप' की बात नहीं मानता, वह केवल 'भूल' की बात स्वीकार करता है; और उसके मत से, तुम सबसे बड़ी भूल तो तब करते हो, जब तुम कहते हो, "मैं कमजोर हूँ एक दुखी जीव हूँ, मुझमें कुछ भी शक्ति नहीं—मुझमें कुछ भी करने की ताकत नहीं।

—स्वामी विवेकानन्द

देहरादून में स्वामी विवेकानन्द

शिवालिक पर्वतमाला व देव भूमि हिमालय की पृष्ठ-भूमि में बसा उत्तर प्रदेश का देहरादून नगर प्रकृति का एक सुन्दर उपहार है। यह नगर वास्तव में भाग्यशाली है क्योंकि मानव-कल्याण के लिए अथक कार्य करनेवाले विश्व-विख्यात युवा संत स्वामी विवेकानन्द का यहाँ दो बार आगमन हुआ। सन् १८९० में एक अज्ञात साधक के रूप में उन्होंने २१ दिन यहाँ बिताये थे। पश्चिम में मानव-प्रेम और विश्वशांति की ज्योति जलाने के बाद वे दुबारा १६ नवम्बर, १८९७ को देहरादून आये थे।

श्रीरामकृष्ण परमहंस जी की अंतिम बीमारी के समय दक्षिणेश्वर में काशीपुर (उद्यान-गृह १८८६) में उनकी सेवा के लिए अनेक नवयुवक शिष्य एकत्रित हुए थे जिनमें नरेन्द्र भी थे। उन शिष्यों ने अपने गुरु के त्यागयुक्त जीवन सिद्धान्त को अपनाने का दृढ़ संकल्प लिया। श्रीरामकृष्ण परमहंसजी ने अपने समस्त शिष्यों का उत्तरदायित्व नरेन्द्र को सौंपकर १६ अगस्त, १८८६ को महाप्रयाण किया। अत: नरेन्द्र ने सभी शिष्यों की आध्यात्मिक प्रगति के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए काशीपुर के निकट वराहनगर में एक नये मठ की स्थापना की।

इस मठ में उच्च आत्मसंयम रखते हुए साधकगण आध्यात्मिक जीवन व्यतीत कर रहे थे। १७ मई १८८७ को इन तपस्वी शिष्यों ने यहीं संन्यास ग्रहण किया। आध्यात्मिक उन्नति और मानव-कल्याण को अपने जीवन का उद्देश्य मानकर नवदीक्षित युवा संन्यासी साधना के लिए एकान्तवास की खोज में अलग-अलग दिशाओं में निकल पड़े।

श्रीमाँ का आशीर्वाद लेकर स्वामी विवेकानन्द भी स्वामी अखंडानन्द के साथ साधना करने हिमालय की ओर चल पड़े। अलमोड़ा में कुछ दिन विश्राम करने के बाद दो अन्य भाइयों को अपने दल में सम्मिलित करके वे बद्रीनाथ, केदारनाथ की यात्रा पर ५ सितम्बर, १८९० को निकले। कर्ण प्रयाग पहुँचने के बाद मार्ग बन्द होने के कारण वे आगे न जा सके। उन्होंने अपना मार्ग बदला और रुद्रप्रयाग पहुँचे। यात्रा के दौरान वे बीमार पड़ गये और रुद्रप्रयाग आकर वे दुबारा अस्वस्थ हो गये। चिकित्सा के लिए उन्हें तथा गुरुभाई को तुरत श्रीनगर (गढ़वाल) पहुँचाया गया। कुछ दिन उन्होंने अलकनन्दा के तट पर स्थास्थ्यलाभ करते हुए बिताये। अपने गुरुभाई की बीमारी के कारण गणेश प्रयाग जाकर एकान्तवास करने की अपनी इच्छा का त्याग कर वे उपचार के लिए देहरादून आये।

स्वामी विवेकानन्द के जीवन में यह एक प्रामाणिक घटना सिद्ध हुई। जब भी उन्होंने एकान्तवास में आध्यात्मिक प्रगति में तल्लीन होने की कोशिश की, किसी न किसी घटना के कारण वे असफल रहे। प्रकृति उनकी समाधि प्राप्ति की तीव्र इच्छा में रोड़े अटकाती रही, क्योंकि उनके लिए ईश्वर द्वारा निर्धारित लक्ष्य संसार कल्याण के लिए काम करना था, न कि आत्म-कल्याण के लिए समाधि।

स्वामीजी टिहरी से पैदल मार्ग लेते हुए राजपुर आए जो ३००० फीट की ऊँचाई पर देहरादून से ६ मील की दूरी पर है। मसूरी की तलहटी में बसे इस ग्राम में एक प्राचीन शिव मंदिर है। इसके प्रांगण में बनी 'बावड़ी' के चारों ओर साधकों की कुटिया थी। स्वामीजी भगवान् आशुतोष को प्रणाम करने के बाद पास ही माँ अम्बिका के भी दर्शन करने गये। 'बावड़ी' के पास अचानक ही

उनकी मुलाकात एक गुरुभाई स्वामी तुरीयानन्द से हुई। एक दिन राजपुर में बिताने के बाद स्वामी विवेकानन्द देहरादून के सिविल सर्जन से अपने गुरुभाई की चिकित्सा के लिए मिले। सिविल सर्जन ने ठंढ से बचाव करना आवश्यक बताया। उपचार के दौरान उनकी स्वामीजी से अनेक विषयों पर बातचीत हुई। वे स्वामीजी से बहुत प्रभावित थे।

उन दिनों एक व्यापारी के निर्माणाधीन मकान के एक सीलन भरे कमरे में स्वामी विवेकानन्द का अस्थायी आवास था। अब उन्हें अपने गुरुभाई के रहने के लिए स्थान की चिन्ता हुई। उन्होंने देहरादून नगर में कई व्यक्तियों से सहायता माँगी। सर्दी बढ़ चली थी पर रहने के लिए अभी तक कोई प्रबन्ध नहीं हो पाया था। इसी बीच उनकी मुलाकात कलकत्ता के सहपाठी श्री हृदय बसु से हुई। वे मिशनरी स्कूल में शिक्षक थे और ईसाई बन चुके थे। स्वामी जी के अनुरोध पर उनके गुरु-भाई को अपने पास रखने की श्री बसु ने स्वीकृति दे दी। लेकिन वहाँ के प्रतिकूल वातावरण और खासतौर पर उनके रसोइए को देखकर गुरुभाई तुरत वापस स्वामी विवेकानन्द के मकान में पहुँच गये। अब दुबारा कमरे की खोज शुरू की गयी। सौभाग्यवश इस बार एक कश्मीरी सज्जन पं० आनन्द नारायण ने भोजन, आवास और चिकित्सा का उचित प्रबन्ध कर दिया।

अपने देहरादून प्रवास में स्वामीजी विभिन्न प्रकृति और विचारों के लोगों से मिले। ऐसा कोई न था जो उनके चुम्बकीय व्यक्तित्व और तीव्र बुद्धि से प्रभावित न हुआ हो। उन्होंने लोगों से धर्म पर बेकार की बहस न करने और सब धर्मों का समान आदर करने का आग्रह किया।

एक बार श्री हृदय बसु के घर उनकी भेंट कुछ मिशनरी कार्यकर्त्ताओं से हुई। वे बातचीत के दौरान दूसरे धर्मों की आलोचना करने लगे। स्वामीजी ने बाइबल से ऐसे कई उदाहरण बताये जो दूसरे लोगों और दूसरे धर्मों के प्रति सहिष्णुता और आदर का भाव दर्शाते थे। जब उनके ठोस उदाहरणों का उत्तर देते न बना तो वे कार्यकर्त्ता उत्तेजित होकर वहाँ से चले गये। स्वामीजी के मन में कोई दुर्भावना नहीं थी। उन्होंने अपने मित्र से उसके घर में उसी के धर्म की समालोचना करने की धृष्टता पर क्षमा माँगी। श्री बसु भी स्वामीजी के उदार विचार और विशाल हृदय को देखकर प्रशंसा किये बिना न रह सके।

देहरादून में ही नंदा नाम के एक व्यापारी रहते थे। वे अपने को बहुत बड़ा वेदान्तिक और विद्वान मानते थे। वास्तविकता यह थी कि वे बहुत कंजूस और व्यापारिक मानसिकता के व्यक्ति थे। किसी कारण श्री नन्दा स्वामी जी से बहुत प्रसन्न थे। उन्हें घर पर गुरुभाइयों सहित आमंत्रित किया और बहुत आदर सत्कार किया। सारे समय श्री नन्दा अपने सीमित ज्ञान का प्रदर्शन करते रहे और स्वामीजी शांति से उनकी बात सुनते रहे ताकि नन्दाजी के अहम् भाव को चोट न पहुँचे। दूसरे की भावना का सम्मान करना सबके वश की बात नहीं है।

पश्चिम में स्वामीजी ने विश्व-धर्म सम्मेलन में वेदान्त के विषय में अपने ओजपूर्ण भाषण से लोगों को आश्चर्यचकित कर दिया। चार वर्षों तक वे हिन्दू-दर्शन से वहाँ की जनता का उत्साह बढ़ाने वाले भाषणों द्वारा परिचय कराते रहे। वहाँ से लौटकर जब २६ जनवरी, १८८७ को स्वामी विवेकानन्द ने अपनी मातृभूमि पर प्रथम चरण रखा तब रामनद के राजा और वहाँ की जनता ने उनका भव्य स्वागत किया। स्वामीजी की विजयकीर्त्ति उनसे पहले ही सब नगरों में पहुच जाती थी।

लगातार कई नगरों में यात्रा करने और भाषण देने से स्वामीजी बहुत थक गये थे और उन्हें

आराम की सख्त जरूरत थी। लेकिन, देहरादून में उनका पहुँचना बहुत आवश्यक था। उनके शिष्य कैप्टेन व श्रीमती एफ० एच० सेवियर देहरादून में एक अनाथालय खोल रहे थे और उसका उद्‌घाटन स्वामीजी से करवाना चाहते थे। स्थानीय लोगों के धर्म-विशेष के एक दल ने कैप्टेन सेवियर के अनाथालय खोलने का किन्हीं कारणों से कड़ा विरोध किया। स्वामी जी ने इस विवाद को यहीं खत्म करने के लिए शांति से काम लेते हुए यहाँ अनाथालय खोलने का विचार छोड़ दिया।

इस घटना से यह स्पष्ट है कि दूसरी बार स्वामीजी देहरादून, समाज के गरीब और अनाथ बच्चों की सेवा और उन्नति के लिए एक अनाथालय खोलने के उद्‌देश्य से ही आये थे। उनका यह स्वप्न यहाँ पूरा न हो सका लेकिन समाज-सेवा में आगे बढ़कर हिस्सा लेनेवाले लोगों में से भी किसी ने तब तक इस प्रकार के काम के विषय में सोचा तक न था।

स्वामी जी का देहरादून आगमन व्यर्थ नहीं गया। उनके जैसे कर्मठ और विद्वान संत अपने समय का हमेशा सदुपयोग करना ही जानते थे। यहाँ भी उन्होंने शिष्यों को इकट्ठा किया और उन्हें वेदान्तिक ज्ञान और रामानुज भाष्य के गूढ़ अर्थों को सरल और सुन्दर ढंग से समझाया। उनकी विवेचना इतनी सुन्दर और सटीक होती थी कि पंडितगण भी आश्चर्यचकित रह जाते थे।

देहरादून का प्राकृतिक वातावरण स्वामीजी को बहुत प्रिय लगा। देहरादून की जनता उनके आगमन को हमेशा याद रखेगी। समाज-कल्याण के पुण्य काम में लगे नर-नारियों को स्वामीजी ने जो प्रेरणा और मार्ग-दर्शन दिया, वह इतिहास में अमर रहेगा।

कश्मीर में विवेकानन्द

—प्रो० चमनलाल सप्रू
१८०-लालनगर, श्रीनगर (कश्मीर)

स्वामी विवेकानन्द कश्मीर में दो बार आये। पहले १८९७ में और दूसरी बार १८९८ में। सम्पूर्ण विश्व का भ्रमण करने के बाद और स्वदेश के प्रत्येक प्रान्त को देखने के उपरान्त उन्हें लगा कि कश्मीर अपनी मूल्यवान परम्पराओं के साथ एक उपजाऊ धरती है। यहाँ बहुत कुछ किया जा सकता है। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि श्रीनगर में एक संस्कृत कॉलेज और रामकृष्ण मठ की स्थापना हो जाये। किन्तु, उनके इस विचार को साकार रूप देने में तत्कालीन ब्रिटिश रेजिडेन्ट बाधा बन गया।

अपने शिष्यों, गुरुभाइयों और मित्रों को लिखे पत्रों से ज्ञात होता है कि कश्मीर के प्रति उनका विशेष आकर्षण था। उनका पहला पत्र स्वामी ब्रह्मानन्दजी को लिखित है। पत्र दिनांक १३ सितम्बर, १८९७ को लिखा गया है। स्थान, प्रधान न्यायाधीश, ऋषिवर मुखोपाध्याय का मकान, श्रीनगर। स्वामीजी को इसकी सुन्दरता ने मोहित किया लेकिन यहाँ की गन्दगी से भी वे उद्विग्न हैं। लिखते हैं—"अब मैं कश्मीर आ पहुँचा हूँ। इस देश के बारे में जो प्रशंसा सुनी जाती है, वह सत्य है। ऐसा सुन्दर देश और नहीं है, यहाँ के सभी लोग

देखने में सुन्दर हैं, विशेष रूप से आँखें अच्छी होती हैं। किन्तु, इस प्रकार नरक सदृश गन्दे गाँव तथा शहर अन्यत्र कहीं भी नहीं हैं। श्रीनगर में ऋषिवर दादू के मकान में आश्रय मिला है। वे अत्यन्त आवभगत भी कर रहे हैं। ·· ···· दो-एक दिन के अन्दर ही भ्रमणार्थ मैं अन्यत्र जाऊँगा, किन्तु लौटते समय पुनः श्रीनगर वापस आऊँगा ··· ··· ।

दूसरा पत्र स्वामी शुद्धानन्द को लिखा है। पत्र दिनांक १५ सितम्बर, १८९७ का है। स्वामीजी लिखते हैं,– आखिर में हम कश्मीर आ पहुँचे हैं। यहाँ की सारी सुन्दरता की बातें तुम्हें लिखने से लाभ ही क्या होगा? मैं समझता हूँ यही एकमात्र देश है जो कि योगियों के लिए अनुकूल है। इस देश के जो वर्त्तमान अधिवासी हैं उनका शारीरिक सौन्दर्य तो अपूर्व है, किन्तु वे हैं नितान्त गन्दे! इस देश के द्रष्टव्य स्थलों को देखने तथा शक्ति प्राप्त करने के लिए एक माह तक नदियों की सैर करने का मेरा विचार है। किंतु इस समय शहर में भयानक 'मलेरिया' का प्रकोप है ···· ··· । कश्मीर सरकार ने अपनी एक बड़ी नाव मुझे इस्तेमाल करने को दी है, वह अत्यन्त सुन्दर तथा सुखप्रद है। उन्होंने जिले के तहसीलदारों के प्रति भी आदेश जारी किया है। हमें देखने के लिए दल बाँधकर यहाँ के लोग आ रहे हैं तथा हमारे सुख-स्वाच्छन्द्य के लिए जो कुछ आवश्यक है, उसकी सारी व्यवस्था की गयी है। ···· ···· एक माह के बाद मैं पंजाब जा रहा हूँ।

तीसरा पत्र श्रीमती इन्दुमती मित्र को लिखित है—"कश्मीर वास्तव में ही भूस्वर्ग है—ऐसा देश पृथ्वी में दूसरा नहीं है। यहाँ पर जैसे सुन्दर पहाड़, वैसी ही नदियाँ, वैसी ही वृक्ष-लतायें, वैसे ही स्त्री-पुरुष एवं पशु-पक्षी आदि सभी सुन्दर हैं। अब तक न देखने के कारण चित्त दुखी होता है।"

दिनांक ३० सितम्बर १८९७ को लिखित चौथा पत्र स्वामी रामकृष्णानन्द को लिखित है। उसमें लिखा है—"अब कश्मीर देखकर लौट रहा हूँ ··· ··· यहाँ के लोगों ने अभी एक भी पैसा मार्ग-व्यय के लिए भी नहीं दिया—ऐसी हालत में मण्डली लेकर भ्रमण करना कितना कष्टसाध्य है, यह तुम खुद समझ सकते हो। केवल उन अंग्रेज शिष्यों के सम्मुख हाथ पसारना भी नितान्त लज्जा की बात है। अतः पहले जैसा ही 'कम्बल' लेकर रवाना हो रहा हूँ।"

एक और पत्र भगिनी निवेदिता को १ अक्टूबर १८९७ का लिखा हुआ है। इसमें कश्मीर के वर्णन इस प्रकार से है—"मैं कश्मीर के वर्णन करने का यत्न तुमसे नहीं करूँगा। इतना कहना पर्याप्त होगा कि इस भूलोक के स्वर्ग के अतिरिक्त किसी देश को छोड़ने का दुःख मुझे नहीं हुआ। मैं भरसक प्रयत्न कर रहा हूँ कि यदि मैं राजा को प्रभावित कर सकूँ तो वे एक केन्द्र खोलें। यहाँ काम करने को बहुत हैं और कार्य-क्षेत्र भी आशाप्रद है। ··· ···

कश्मीर से चलकर स्वामीजी पंजाब आदि होते हुए जम्मू पहुँचे। ३ नवम्बर १८९७ को जम्मू से एक पत्र भगिनी निवेदिता को लिखा। उसमें से कुछ उद्धरण यहाँ प्रस्तुत हैं—"कश्मीर नरेश की ओर से कुछ जमीन प्राप्त होने की आशा है। तदर्थ मैं गत १५ दिनों से यहाँ पर हूँ। यदि मुझे यहाँ रहना पड़ा तो आगामी गर्मी के दिनों में पुनः कश्मीर जाने का विचार है एवं वहाँ पर कुछ कार्य प्रारम्भ करने की अभिलाषा है।"

इसके बाद १८९८ में मार्च के महीने में ही स्वामी विवेकानन्द ने शशि के नाम एक पत्र में श्रीमती बुल तथा कुमारी मैकलिआड के साथ पुनः कश्मीर जाने की इच्छा व्यक्त की है। तदन्तर १७ जुलाई १८९८ को अलमोड़ा में स्वामी ब्रह्मानन्दजी को लिखित एक पत्र में उन्होंने कश्मीर का वर्णन

किया है। "कश्मीर में अभी तक जमीन नहीं मिल सकी है—शीघ्र ही मिलने की आशा है।"

१ अगस्त १८९८ को श्रीनगर में स्वामी ब्रह्मानन्द के नाम एक पत्र में स्वामीजी लिखते हैं – "कश्मीर के राजा साहिब जमीन देने के लिए प्रस्तुत हैं। मैंने जमीन भी देख ली है। यदि प्रभु की इच्छा होगी तो अब दो-चार दिन में कार्य हो जायगा। अबकी बार यहाँ पर एक छोटा-सा मकान बनवाना है। जाते समय न्यायधीश मुखर्जी की देख-रेख में छोड़ जाऊँगा अथवा तुम यहाँ और किसी के साथ आकर जाड़े भर रह जाओ। शरीर भी ठीक हो जायेगा तथा कार्य भी होगा।"

२५ अगस्त, १८९८ को लिखित उनके पत्र में कश्मीर के सौंदर्य से अत्यधिक प्रभावित उनके विचार उल्लेखनीय हैं—

"गत दो महीने से मैं आलसी की तरह दिन बिता रहा हूँ। भगवान की दुनिया में जिसे उज्ज्वल सौन्दर्य की पराकाष्ठा मानी जाती है, उसके अन्दर होकर प्रकृति के इस नैसर्गिक उद्यान में जहाँ पृथ्वी, वायु, भूमि, तृण, गुलमराजि, वृक्ष-श्रेणी, पर्वत मालाएँ, बर्फ राशि एवं नरदेह के कम-से-कम बाहरी हिस्सों में भगवत्सौंदर्य का विकास हो रहा है-- उसी के अन्दर मनोहर झेलम के वक्षस्थल पर नाव में तैर रहा हूँ। वही मेरा मकान है, और प्रायः मैं काम से मुक्त हूँ—यहाँ तक कि लिखना-पढ़ना भी नहीं जैसा है, जो पैसा मिल रहा है, उसी से उदर-पूर्त्ति की जा रही है माओ रिव – वाग विकल के साँचे में ढला हुआ जीवन है। ...

कश्मीर से लिखे हुए स्वामीजी के आठ-दस पत्र निःसन्देह यह सिद्ध करते हैं कि स्वामीजी कश्मीर के भूतकाल से अत्यन्त प्रभावित हुए, यहाँ के नैसर्गिक सौन्दर्य के वे मतवाले हो गये; यहाँ की वर्त्तमान दशा से क्षुब्ध थे और फिर कश्मीर की अनुकूल परिस्थितियों का लाभ उठाते हुए वह कश्मीर में रामकृष्ण मठ की स्थापना करने के तीव्र इच्छुक थे।

सम्भवतः कश्मीर में प्रचलित धर्म-सहिष्णुता से ही प्रभावित होकर उन्होंने अपने मित्र मुहम्मद सरफराज हुसैन को लिखा था, "हमारी मातृभूमि के लिए इन दोनों विशाल मतों का सामंजस्य - हिन्दुत्व और इस्लाम—वेदान्ती बुद्धि और इस्लामी शरीर, यही एक आशा है। मैं अपने मानस-चक्षु से भावी-भारत की उस पूर्णावस्था को देखता हूँ, जिसका इस विप्लव और संघर्ष से तेजस्वी और अजेय रूप में वेदान्तिक बुद्धि और इस्लामी शरीर के साथ उत्थान होगा।

\+ \+ \+

१८९८ में अपने अनेक शिष्यों (जिनमें विदेशी भी थे) के साथ रावलपिण्डी से बारामूला तक स्वामीजी ताँगे में बैठकर आये थे। बारामूला से श्रीनगर की यात्रा उन्होंने नौकाओं में की। इस प्रकार २२ जून, १८९८ को स्वामीजी श्रीनगर पहुँचे। बचपन से ही स्वामीजी भगवान शिवजी के प्रति विशिष्ट रूप से आकर्षित थे। ज्यों-ज्यों वे बड़े होते गये भगवान शंकर के प्रति उनका प्रेम बढ़ता ही गया। अब तो हिमालय की गोद में विचरण करते हुए उनका शिवजी का ध्यान उनके मन में और मस्तिष्क में छाया हुआ था। अपने शिष्यों से वह बात-बात पर शिव के स्वरूप और शिव-शक्ति की एकरूपता का वर्णन करते थे।

बारामूला से आगे कश्मीर घाटी के अन्तरतम स्थलों में घूमने के उपरान्त स्वामीजा का दिमाग कश्मीर के इतिहास, भग्नावशेषों, शृंगमालाओं आदि में ही खोया रहता था। इधर घूमते-घूमते स्वामीजी कश्मीरी जनजीवन में मिल गये। कहीं समावार में बनी कश्मीरी चाय का आनन्द लेते और कहीं यहाँ के लोगों के रीतिरिवाजों का अनुपालन करते। एक चर्खा कातती हुई मुस्लिम

महिला ने उनका स्वागत सत्कार किया। इस वृद्धा के सौहार्द्र और वात्सल्य ने स्वामीजी को अत्यन्त भावुक बना दिया।

पुरातत्व में रुचि

इधर कश्मीर में स्वामीजी के मन में एकान्तवास की तीव्र इच्छा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी। अतः जब कभी समय मिलता स्वामीजी अपने साथियों को छोड़कर दूर जंगलों में अकेला घूमते-फिरते थे। काफी देर से लौट आते। उनके मुखमंडल पर उस समय एक अद्भुत तेज झलकता था, जो उन्हें इस एकान्तवास में 'ज्ञान के स्रोत' से सम्पर्क के उपरान्त उत्पन्न होता था।

कश्मीर भ्रमण में एक दिन वह शंकराचार्य मन्दिर देखने गये। उस अद्भुत रमणीय स्थल के व्यापक दृश्य को देखने के बाद स्वामीजी ने कहा – "देखो, मन्दिर स्थापना के समय हिन्दू किस प्रतिभा का प्रदर्शन करता है? देखो, शंकराचार्य मन्दिर सारे कश्मीर पर छाया हुआ है। उधर हारी पर्वत नीले पानी के बीच में से लाल चट्टान-सा उभर आया है। ऐसा लगता है एक शेर की भाँति, उसी मुद्रा में (जिसके ऊपर माँ दुर्गा विराजमान हैं)। और वह मार्तण्ड का भव्यमन्दिर—सारी घाटी उसके चरणों में है।"

चार जुलाई का दिन पास आ रहा था। यह दिन अमरीकावासियों की स्वतंत्रता का दिन है। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध कविता 'टु द फोर्थ ऑफ जुलाई' (चौथी जुलाई के प्रति) की रचना की और नाश्ते के समय अमरीकी शिष्यमंडली को सुनाया। इसमें उन्होंने अपने आपको अनन्त में खो जाने की बात सोची है। समय ने सिद्ध किया कि यह कविता उन्होंने भविष्यद्रष्टा की हैसियत से लिखी थी। चार वर्ष पश्चात उसी दिन अपने मिशन को पूरा करने के बाद उन्होंने महासमाधि प्राप्त की।

शान्ति और एकान्त की इच्छा उनके मन में निरन्तर बढ़ती गयी। अपने कार्यक्रम को गुप्त रखते हुए १० जुलाई, १८९८ को बिना पैसा साथ में लिये अकेला ही उन्होंने सोनामर्ग के रास्ते प्रसिद्ध तीर्थ अमरनाथ जाने की तैयारी की। ग्लेश्यरों के पिघलने के कारण वह मार्ग दुस्साध्य था, अतः स्वामीजी को लौटना पड़ा। फिर, १३ जुलाई, १८९८ को अपने सहयोगियों के साथ स्वामीजी अनन्तनाग की ओर रवाना हुए। श्रीनगर में थोड़ी दूर पर पांद्रेठण (पुराणाधिष्ठाय) का प्राचीन मंदिर देखने पर उन्होंने भारतीय पुरातत्व की विशेषताओं से साथियों को अवगत किया। भगिनी निवेदिता इस स्थान के बारे में लिखती हैं, "स्वामीजी इस अद्भुत प्राचीन मन्दिर को देखकर अत्यन्त प्रभावित हुए। उन्होंने कहा कि यह बौद्ध-शैली में बना हुआ है। स्वामीजी ने कश्मीर के इतिहास को चार युगों में विभाजित किया। १. वृक्ष और सर्प पूजन का युग जिनसे सभी चश्मों (नागों) के नाम जुड़े हैं, जैसे वेरीनाग आदि। २. बौद्धयुग ३ सूर्य-उपासना का हिन्दू युग, ४. इस्लाम युग। दूसरे दिन उन्होंने अवन्तिपुर मन्दिर के भग्नावशेष देखे। और उसके बाद बिजबिहाड़ा। इस दौरान प्रायः प्रतिदिन स्वामीजी प्रातःकालीन भ्रमण के लिए दूर-दूर खेतों में या नदी किनारे जाते थे। एक शिष्य इस समय की उनके साथ हुई वार्ताओं का वर्णन करते हुए कहते हैं, 'स्वामीजी के विचार ताजी हवा के झोंकों के समान स्फूर्तिदायक तथा फलदार वृक्षों में लगे शगूफों की भाँति आत्मोन्नति के कारण बननेवाले होते थे।"

अमरनाथ दर्शन

२३ जुलाई, १८९८ ई० को स्वामाजी अपने सहयोगियों के साथ मार्त्तण्ड का प्रसिद्ध मन्दिर देखने गये और २५ जुलाई को अच्छाबल पहुँचे। यहीं पर स्वामीजी ने अमरनाथ यात्रा की योजना

बनायी। मार्ग में असंख्य साधुओं और यात्रियों पर स्वामीजी के अपूर्व व्यक्तित्व का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता था। आरम्भ में अपने साथ यात्रा पर कुछ विदेशी शिष्यों को ले जाने पर कुछ कट्टर-वादियों के विरोध का भी उनको सामना करना पड़ा। बाद में सैकड़ों यात्रियों को उन्होंने अपने दैनिक प्रवचनों से अपने विचारों का अनुयायी बनाया।

२ अगस्त, १८९८ को दर्शन के लिए स्वामीजी ने गुफा के बाहर अमर गंगा में स्नान करने की अमर-भभूति शरीर में लगाकर मात्र कौपीन धारण करके गुफा में प्रवेश किया। इसके पश्चात शिव-लिंग के सामने दण्डवत करके अद्भुत एव दिव्य वातावरण में लीन हो गये। उस समय की अनुभूति का वर्णन करते हुए बाद में उन्होंने कहा कि मेरे सामने साक्षात् शिव खड़े थे। ऐसी उत्तेजक आध्यात्मिक शक्ति का स्थल उन्होंने इससे पहले नहीं देखा था। उनके ही शब्दों में—"अभूतपूर्व ! सुन्दर !! प्रेरणादायी !!!"

महाराजा द्वारा भूमिदान की इच्छा

महराजा प्रताप सिंहजी ने स्वामीजी का यथोचित सम्मान किया। अपने अनुज राजा राम-सिंह को स्वामीजी की देखभाल का काम सौंपा। महाराजा ने उन्हें रामकृष्ण मठ तथा संस्कृत कॉलेज की स्थापना के लिए भूमि का चयन करने का निवेदन किया। अँग्रेजों द्वारा प्रयुक्त 'कैम्पिग ग्राउंड' जो नदी पर था, को स्वामीजी ने चुन लिया। कई सप्ताह बाद सरकार ने स्वामीजी को सूचित किया कि 'रेजिडेंट' ने दो बार इस प्रस्ताव को 'विटो' कर दिया है। इससे स्वामीजी उद्विग्न हुए।

जगदम्बा के चरणों में

अमरनाथजी की यात्रा के बाद स्वामीजी की महिमा का केन्द्रबिन्दु "माँ" बन गयीं। कुछ समय के लिए उन्होंने अपनी नौका के चालक की छोटी कन्या की 'उमा' के रूप में उपासना की। अपने शिष्यों से उन्होंने कहा —"मैं जहाँ जाता हूँ, मुझे माँ ही माँ दिखायी देती है। इन्हीं दिनों की बात है कि उन्होंने 'काली द मदर' (काली माता) नामक प्रसिद्ध कविता की रचना की।

३० सितम्बर १८९८ को स्वामीजी क्षीर भवानी के प्रसिद्ध तीर्थ पर गये। अपने शिष्यों को आदेश दिया कि कोई मेरा पीछा न करे। वहाँ पर उन्होंने एक सप्ताह तक विश्राम किया। अधिक-से-अधिक समय माँ के ध्यान में लगाया। विधिवत् माता क्षीर भवानी की प्रतिदिन उपासना करते रहे। एक ब्राह्मण की छोटी कन्या की कुमारी रूप में पूजा की। यहाँ उन्होंने देवी माँ के सामने आत्मसमर्पण किया।

१२ अक्टूबर, १८९८ को स्वामीजी अपने शिष्यों के साथ श्रीनगर से पंजाब की ओर चल पड़े।

★

"भारत को कम-से-कम अपने सहस्र तरुण मनुष्यों की बलि की आवश्यकता है, पर ध्यान दो — "मनुष्यों" की, 'पशुओं' की नहीं।

— स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द और मध्य प्रदेश

—स्वामी आत्मानन्द

यह बात बहुत कम लोग जानते हैं कि जिन स्वामी विवेकानन्द ने अपनी प्रखर तेजस्विता और प्रतिभा से केवल भारतवर्ष को ही नहीं, अपितु सारे विश्व को प्रभावित किया, उनके कैशोर्य के दो महत्त्वपूर्ण वर्ष मध्यप्रदेश के रायपुर नगर में बीते; तथा उन्होंने अपने खण्डवा, ओंकारेश्वर, इन्दौर और उज्जैन आदि स्थानों के परिव्रजन-काल में जो स्मृतियाँ संचित कीं वे उनके जीवनकाल तक अमिट और प्रभावी बनी रहीं। हम उनकी ऐसी ही कतिपय स्मृतियों को, जो मध्यप्रदेश से सम्बन्ध रखती हैं, यहाँ पर लिपिबद्ध करने की चेष्टा करेंगे। पर इसके पूर्व हम यह देख लें कि उन्होंने हमारे देश के कतिपय महापुरुषों को किस प्रकार प्रभावित किया था।

महात्मा गाँधी ने कहा था; "मैंने स्वामी विवेकानन्द के ग्रन्थों को अच्छी तरह पढ़ा है। फलस्वरूप, अपने देश के प्रति जो मेरा प्रेम था, वह हजार गुना बढ़ गया है।" लोकमान्य तिलक ने उनके देहावसान पर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए लिखा था "....पाश्चात्य आधिभौतिक शास्त्रों का प्रवाह अँग्रेजी विद्या के साथ इतने जोरों से आ रहा था कि उसे रोकने के लिए एक असामान्य धैर्य और बुद्धिवाले पुरुष के आविर्भाव की आवश्यकता थी। यह कार्य विवेकानन्द ने ही अपने हाथों में लिया।....अगर हमारे सौभाग्य से वे और भी कुछ दिन हमारे बीच रहते, तो राष्ट्र को राष्ट्रीयत्व प्राप्त करने के लिए जिस तेज की आवश्यकता होती है, वह हमें अवश्य प्राप्त हुआ होता।" पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने कहा था "पता नहीं कि आज की पीढ़ी में कितने लोग स्वामी विवेकानन्द के व्याख्यानों और लेखों को पढ़ते हैं। पर मैं कह सकता हूँ कि मेरी पीढ़ी के बहुत से लोगों पर उनका बहुत सशक्त प्रभाव पड़ा था।.... वे साधारण अर्थ में कोई राजनीतिज्ञ नहीं थे, फिर भी, मेरी राय में, वे भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के महान् संस्थापकों में से एक थे, और आगे चलकर जिन लोगों ने आन्दोलन में थोड़ा या बहुत सक्रिय भाग लिया, उनमें से अनेक के प्रेरणा-स्रोत स्वामी विवेकानन्द थे।" योगी अरविन्द लिखते हैं, "यदि कभी कोई शौर्य-पुरुष था, तो वह विवेकानन्द थे। वे पुरुषों में सिंह थे। वह सिंह सदृश महाबली, अन्तःप्रज्ञ उत्तोलक प्रभाव भारत की आत्मा में प्रविष्ट हो गया है और हम कह सकते हैं देखो! मातृभूमि और उसकी सन्तान की आत्मा में विवेकानन्द आज भी विद्यमान हैं।" नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने अपने एक पत्र में लिखा, "उन्होंने (विवेकानन्द ने) अपने समूचे जीवन को समग्र राष्ट्र एवं मानवता के नैतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान के लिए समर्पित कर दिया था। ... आधुनिक भारत उन्हीं की सृष्टि है।" चक्रवर्ती राजगोपालचारी ने लिखा था। 'स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म को बचाया और इस प्रकार भारत की रक्षा की। वे न होते, तो हम अपना धर्म गँवा बैठते और आजादी नहीं पा सकते थे। अतएव हम सभी बातों के लिए विवेकानन्द के ऋणी हैं।" रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा था, "(विवेकानन्द का) कितना उदात्त सन्देश है। ...वह हमारे समग्र मनुष्यत्व को जगाने की पुकार है। उसने हमारे बहुत-से युवकों को कर्म, त्याग और बलिदान के माध्यम से स्वातंत्र्य के विविध पथों पर चलने की प्रेरणा दी।" भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने कहा, "ऐसे लोग अत्यन्त इने-गिने हैं जो अपने मानव-बन्धुओं का जीवन के किसी क्षेत्र में नेतृत्व करते हैं, और जो

इन अग्रसरों का मार्ग-दर्शन करते हैं, वे तो और भी विरल हैं। ऐसे अति नेताओं का डूबती हुई मानवता को उठाने के लिए पृथ्वी पर आगमन बार-बार नहीं हुआ करता। स्वामी विवेकानन्द ऐसे ही अति महान् आत्माओं में एक थे।'' भारत के राष्ट्रपति डा० एस० राधाकृष्णन् ने कहा, ''उन्होंने दुःखों में हमें धीरज दिया, हताशा में आशा दी और दुर्बलता के क्षणों में साहस प्रदान किया।' श्रीमती विजयालक्ष्मी पण्डित ने विवेकानन्द को 'नव भारत एवं नव विश्व का मसीहा' निरूपित करते हुए कहा, ''आधुनिक' भारत के निर्माताओं में से एक, स्वामी विवेकानन्द, भारतीय पुनर्जागरण आन्दोलन के, जो उन्नीसवीं शती के प्रारम्भ में राम मोहन राय से शुरू हुआ, सुन्दरतम विकसित पुरुष थे।'' भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री मोरारजी आर० देसाई ने कहा, ''उन्होंने पहली बार भारत को विश्व के नक्शे में रखा.....।'' भारत की भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी कहती हैं, ''मेरा विशेष सौभाग्य रहा है कि जब मैं बहुत छोटी थी, तभी से मुझे स्वामी विवेकानन्द की रचनाओं, उपदेशों और जीवनी से तथा रामकृष्ण मिशन से परिचित कराया गया है। .... और मैं यथार्थतः कह सकती हूँ कि स्वामी विवेकानन्द के वचनों ने मेरे सारे परिवार को, हमारे राजनैतिक कार्यों के लिए ही नहीं, हमारे दैनन्दिन जीवन के लिए भी अत्यधिक प्रेरणा प्रदान की है।'' अन्त में प्रसिद्ध फ्रेंच लेखक रोमाँ रोला का उल्लेख कर दें, जो लिखते हैं ''भातीय राष्ट्रवादी आन्दोलन बहुत समय तक धूमायित रहा, जबतक कि विवेकानन्द के निःश्वास ने राख को उड़ाकर अग्नि को धधका न दिया, और वह उनकी मृत्यु के तीन वर्ष बाद १९०५ ई० में जोरों से भड़क उठा।''

तो, ऐसे थे विवेकानन्द, जो नरेन्द्र नाथ दत्त के रूप में सन् १८७७ ई० में रायपुर आये। तब उनकी वय १४ वर्ष की थी और वे मेट्रोपोलिटन विद्यालय की तीसरी श्रेणी (आज की आठवीं कक्षा के समकक्ष) में पढ़ रहे थे। उनके पिता विश्वनाथ दत्त तब अपने पेशे के काम से रायपुर में रह रहे थे। जब उन्होंने देखा कि रायपुर में काफी समय रहना पड़ेगा तब उन्होंने अपने परिवार के लोगों को भी रायपुर में बुला लिया। नरेन्द्र अपने छोटे भाई महेन्द्र, बहन जोगेन्द्र-बाला तथा माता भुवनेश्वरी देवी के साथ कलकत्ता से रायपुर के लिए रवाना हुए। तब रायपुर कलकत्ते से रेललाइन के द्वारा नहीं जुड़ा था। उस समय रेलगाड़ी कलकत्ता से इलाहाबाद, जबलपुर, भुसावल होते हुए बम्बई जाती थी। उधर नागपुर भुसावल से जुड़ा हुआ था, तब नागपुर से इटारसी होकर दिल्ली जानेवाली रेललाइन भी नहीं बनी थी। अतः बहुत सम्भव है, नरेन्द्र अपने परिवार के सदस्यों के साथ जबलपुर उतरे हों और वहाँ से रायपुर आने के लिए बैलगाड़ी की हो। उनके कुछ जीवनीकारों ने लिखा है कि नरेन्द्र एवं उनके घर के लोग नागपुर से बैलगाड़ी द्वारा रायपुर गये, पर नरेन्द्र को इस यात्रा में जो एक अलौकिक अनुभव हुआ, वह संकेत करता है कि वे लोग जबलपुर से ही बैलगाड़ी द्वारा मण्डला, कवर्धा होकर रायपुर गये हों। उनके कथनानुसार, इस यात्रा में उन्हें पन्द्रह दिनों से भी अधिक का समय लगा था। उस समय पथ की शोभा अत्यन्त मनोरम थी। रास्ते के दोनों किनारों पर पत्रों और फूलों से लदे हुए हरे-हरे सघन वनवृक्ष होते। भले ही नरेन्द्रनाथ को इस यात्रा में कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था, तथापि, उनके ही शब्दों में, ''वनस्थली का अपूर्व सौन्दर्य देखकर वह क्लेश मुझे क्लेश ही नहीं प्रतीत होता था। अयाचित होकर भी जिन्होंने पृथ्वी को इस अनुपम वेशभूषा के द्वारा सजा रखा है, उनकी असीम शक्ति और अनन्त प्रेम का पहले-

पहल साक्षात् परिचय पाकर मेरा हृदय मुग्ध हो गया था।" उन्होंने बताया था, "वन के बीच से जाते हुए उस समय जो कुछ मैंने देखा या अनुभव किया, वह स्मृतिपटल पर सदैव के लिए दृढ़ रूप से अंकित हो गया है। विशेष रूप से एक दिन की बात उल्लेखनीय है। उस दिन हम उन्नत शिखर विन्ध्य-पर्वत के निम्न भाग की राह से जा रहे थे। मार्ग के दोनों ओर बीहड़ पहाड़ की चोटियाँ आकाश को चूमती हुई खड़ी थीं। तरह-तरह के वृक्ष लताएँ, फल और फूलों के भार से लदी हुई, पर्वतपृष्ठ को अपूर्व शोभा प्रदान कर रही थीं। अपने मधुर कलरव से समस्त दिशाओं को गुंजाते हुए रंग-बिरंगे पक्षी कुंज-कुंज में घूम रहे थे, या फिर कभी-कभी आहार की खोज में भूमि पर उतर रहे थे। इन दृश्यों को देखते हुए मैं मन में अपूर्व शान्ति का अनुभव कर रहा था। धीर मन्थर गति से चलती हुई बैलगाड़ियाँ एक ऐसे स्थान पर पहुँचीं, जहाँ पहाड़ की दो चोटियाँ मानो प्रेमवश आकृष्ट हो आपस में स्पर्श कर रही हैं। उस समय उन शृंगों का विशेष रूप से निरीक्षण करते हुए मैंने देखा कि पासवाले एक पहाड़ में नीचे से लेकर चोटी तक एक बड़ा भारी सुराख है और उस रिक्त स्थान को पूर्ण कर मधुमक्खियों के युग-युगान्तर के परिश्रम के परिणामस्वरूप एक प्रकाण्ड मधुचक्र लटक रहा है। उस समय विस्मय में मग्न होकर उस मक्षिकाराज्य के आदि एवं अन्त की बातें सोचते-सोचते मन तीनों जगत के नियन्ता ईश्वर की अनन्त उपलब्धि में इस प्रकार डूब गया कि थोड़ी देर के लिए मेरा सम्पूर्ण बाह्य ज्ञान लुप्त हो गया। कितनी देर तक इस भाव में मग्न होकर मैं बैलगाड़ी में पड़ा रहा, याद नहीं। जब पुनः होश में आया, तो देखा कि उस स्थान को छोड़कर काफी दूर आगे बढ़ गया हूँ। बैलगाड़ी में मैं अकेला ही था, इसलिए यह बात और कोई न जान सका।" नरेंद्रनाथ की यह रायपुर-यात्रा इसलिए भी विशेष महत्त्वपूर्ण हो जाती है कि इस यात्रा में उन्हें अपने जीवन में पहली बार भाव-समाधि का अनुभव हुआ था।

रायपुर में अच्छा विद्यालय नहीं था। इसलिए नरेन्द्रनाथ पिता से ही पढ़ा करते थे। यह शिक्षा केवल किताबी नहीं थी। पुत्र की बुद्धि के विकास के लिए पिता अनेक विषयों की चर्चा करते। यहाँ तक कि पुत्र के साथ तर्क में भी प्रवृत्त हो जाते और क्षेत्र-विशेष में अपनी हार स्वीकार करने में कुण्ठित न होते। उन दिनों विश्वनाथ बाबू के घर में अनेक विद्वानों और बुद्धिमानों का समागम हुआ करता तथा विविध सांस्कृतिक विषयों पर चर्चा चला करती। नरेन्द्रनाथ बड़े ध्यान से सब कुछ सुना करते और अवसर पाकर किसी विषय पर अपना मन्तव्य भी प्रकाशित कर देते। उनकी बुद्धिमत्ता तथा ज्ञान को देखकर बड़े-बूढ़े चमत्कृत हो उठते, इसलिए कोई भी उन्हें छोटा समझ उनकी अवहेलना नहीं करता था। एक दिन ऐसी ही चर्चा के दौरान नरेन्द्र ने बँगला के एक ख्यातनामा लेखक के गद्य-पद्य से अनेक उद्धरण देकर अपने पिता के एक सुपरिचित मित्र को इतना आश्चर्यचकित कर दिया कि वे प्रशंसा करते हुए बोल पड़े, "बेटा, किसी न किसी दिन तुम्हारा नाम हम अवश्य सुनेंगे।" कहना न होगा कि यह मात्र स्नेहसिक्त अत्युक्ति नहीं थी— वह तो एक अत्यन्त सत्य भविष्यवाणी भी। नरेन्द्रनाथ बंगसाहित्य में अपनी चिरस्थायी स्मृति रख गये।

बालक नरेन्द्र बालक होते हुए भी आत्म-सम्मान की रक्षा करना जानते थे। अगर कोई उनकी आयु को देखकर अवहेलना करना चाहता, तो वे सह नहीं सकते थे। बुद्धि की दृष्टि से वे जितने बड़े थे, वे स्वयं को उससे छोटा या बड़ा समझने का कोई कारण नहीं खोज पाते थे तथा दूसरों को इस प्रकार सोचने का कोई

अवसर, भी नहीं देना चाहते थे। एक बार जब उनके पिता के एक मित्र बिना कारण उनकी अवज्ञा करने लगे, तो नरेन्द्र सोचने लगे, "यह कैसा आश्चर्य है : मेरे पिता भी मुझे इतना तुच्छ नहीं समझते, और वे मुझे ऐसा कैसे समझते हैं ?" अतएव, आहत मणिधर के समान सीधा होकर उन्होंने दृढ़ स्वरों में कहा, "आपके समान ऐसे अनेक लोग हैं, जो यह सोचते हैं कि लड़कों में बुद्धि-विचार नहीं होता। किन्तु यह धारणा नितान्त गलत है।" जब आगन्तुक सज्जन ने देखा कि नरेन्द्र अत्यन्त क्षुब्ध हो उठे हैं और वे उसके साथ बात करने के लिए भी तैयार नहीं हैं, तब उन्हें अपनी त्रुटि स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ा। कठोपनिषद् में बालक नचिकेता में भी ऐसी ही आत्म श्रद्धा दिखाई देती है। उसने कहा था, "बहुत-से लोगों में मैं प्रथम श्रेणी का हूँ और बहुत में मध्यम श्रेणी का, पर मैं अधम कदापि नहीं हूँ।"

नरेन्द्र में पहले से ही पाकविद्या के प्रति स्वाभाविक रुचि थी। रायपुर में हमेशा अपने परिवार में ही रहने के कारण तथा इस विषय में अपने पिता से सहायता प्राप्त करने तथा उनका अनुकरण करने से वे इस विद्या में और भी पटु हो गये। रायपुर में उन्होंने शतरंज खेलना भी सीख लिया तथा अच्छे खिलाड़ियों के साथ वे होड़ भी लगा सकते थे। फिर, रायपुर में ही विश्वनाथ बाबू ने नरेन्द्र को संगीत की पहली शिक्षा दी। विश्वनाथ स्वयं इस दिशा में पारंगत थे और उन्होंने इस विषय में नरेन्द्र की अभिरुचि ताड़ ली थी। नरेन्द्र का कण्ठस्वर बड़ा ही सुरीला था। वे आगे चलकर एक सिद्धहस्त गायक बने थे, पर उनके व्यक्तित्व का यह पक्ष भी रायपुर में विकसित हुआ।

डेढ़ वर्ष रायपुर में रहकर विश्वनाथ सपरिवार कलकत्ता लौट आये। तब नरेन्द्र का शरीर स्वस्थ, सबल और हृष्ट-पुष्ट हो गया और मन उन्नत। उनमें आत्मविश्वास भी जाग उठा था और वे ज्ञान में भी अपने समवयस्कों की तुलना में बहुत आगे बढ़ गये थे। किन्तु बहुत समय तक नियमित रूप से विद्यालय में न पढ़ने के कारण शिक्षकगण उन्हें अपर की (प्रवेशिका) कक्षा में भरती नहीं करना चाहते थे। बाद में विशेष अनुमति प्राप्त कर वे विद्यालय की इसी कक्षा में भरती हुए तथा अच्छी तरह से पढ़ाई कर सभी विषयों को थोड़े ही समय में तैयार करके उन्होंने १८७९ में परीक्षा दी। यथासमय परीक्षा का परिणाम निकलने पर देखा कि वे केवल उत्तीर्ण ही नहीं हुए हैं, प्रत्युत उस वर्ष विद्यालय से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होनेवाले वे एकमात्र विद्यार्थी हैं। यह सफलता अर्जित कर उन्होंने अपने पिता से उपहारस्वरूप चाँदी की एक सुन्दर घड़ी प्राप्त की थी।

रायपुर में घटी और दो घटनाएँ नरेन्द्र नाथ के व्यक्तित्व के विकास की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। विश्वनाथ ने पुत्र को संगीत के साथ-साथ पौरुष की भी शिक्षा दी थी। एक समय नरेन्द्रनाथ पिता के पास गये और उनसे पूछ बैठे, "आपने मेरे लिए क्या किया है ?" तुरन्त उत्तर मिला, "जाओ, दर्पण में अपना चेहरा देखो !" पुत्र ने तुरन्त पिता के कथन का मर्म समझ लिया, वह जान गया कि उसके पिता मनुष्यों में राजा हैं।

एक दूसरे समय नरेन्द्र ने अपने पिता से पूछा था कि संसार में किस प्रकार रहना चाहिए, अच्छी वर्त्तनी का मापदण्ड क्या है ? इसपर पिता ने उत्तर दिया था," कभी आश्चर्य व्यक्त मत करना !" क्या यह वही सूत्र था, जिसने नरेन्द्र नाथ को विवेकानन्द के रूप में समदर्शी बनाकर-राजाओं के राजप्रासाद और निर्धनों की कुटिया

में समान गरिमा के साथ जाने में समर्थ बनाया था ?

उपर्युक्त विवरण प्रदर्शित करते हैं कि नरेन्द्र के व्यक्तित्व के सर्वतोमुखी विकास में रायपुर का क्या योगदान रहा है। अब आइए, उनके जीवन का यह पक्ष भी देखें, जब वे संन्यास ले, स्वामी विवेकानन्द बने, भारत का परिव्रजन करते हुए जून, १८९२ के उत्तरार्ध में खण्डवा पहुँचे। सम्भवतः उनका मानस ओंकारेश्वर और उज्जैन के प्रसिद्ध तीर्थों के दर्शन का था। इसीलिए वे इन्दौर के किसी बेडेकर के नाम जूनागढ के दीवान से परिचय-पत्र लेते आये थे। वे सम्भवतः बम्बई से रेलगाड़ी द्वारा खण्डवा आकर उतरे थे और शहर में घूम रहे थे कि वहाँ के एक प्रतिष्ठित वकील बाबू हरिदास चटर्जी के निवास के सामने आ पहुँचे। हरिदास बाबू जब कचहरी से शाम को लौटे, तो उन्होंने देखा कि उनके घर के सामने कोई संन्यासी खड़ा है। पहले तो उन्होंने उस संन्यासी को साधारण साधु ही समझा, पर जब उन्होंने उससे थोड़ा वार्त्तालाप किया, तो पाया कि उसके जैसा विद्वान उन्हें आज तक नहीं मिला। उन्होंने आदरपूर्वक संन्यासी को अपने घर का निमंत्रण दिया और थोड़े दिनों में ही घर के सभी लोग स्वामीजी से इतने घनिष्ट हो गये कि उन्हें अपने ही बीच का एक मानने लगे।

यद्यपि कहा जाता है कि स्वामीजी खण्डवा में हरिदास बाबू के यहाँ तीन सप्ताह रहे, पर लगता है कि इसी बीच उन्होंने ओंकारेश्वर की यात्रा कर ली। वहाँ उन्होंने ममलेश्वर ज्योतिर्लिंग और सिद्धनाथ मंदिर के दर्शन किये और पुण्यतोया नर्मदा के पावन क्षेत्र में विचरण कर वहाँ के तपोपूत वातावरण का लाभ लिया। वहाँ से स्वामीजी महेश्वर गये होंगे, जो कुछ और आगे नर्मदातट पर बसा हुआ है। यहाँ का मुख्य आकर्षण अहिल्या बाई होल्कर का राजप्रासाद है, जिस पर नदी की ओर से आने के लिए पक्के चौड़े घाट और सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। महेश्वर का घाट वाराणसी के घाट का स्मरण दिलाता है और दोनों स्थानों के घाट महीयसी रानी अहिल्या बाई के द्वारा ही बनाये हुए हैं। स्वामीजी इन्दौर स्टेट की इस प्रसिद्ध रानी का नाम बड़ी ही श्रद्धा से लेते थे, जो भारत के महानतम शासकों में से थी। कहा जाता है कि रानी की धर्मादा संस्थाएँ हिमालय से कन्याकुमारी और सोमनाथ से जगन्नाथपुरी तक सर्वत्र फैली हुई थीं। रामायण और महाभारत के काल में तथा बौद्ध साहित्य में, यह महेश्वर माहिस्मती के रूप से प्रसिद्ध था। इसका संबंध हैहय-प्रमुख कार्तवीर्यार्जुन के साथ भी जोड़ा जाता है, जिसने लंकाधिपति रावण को युद्ध में पराजित किया था। फिर, अनुमान किया जा सकता है कि स्वामीजी निकटस्थ मण्डलेश्वर भी गये हों, जिसका संबंध, स्थानीय परम्परा के अनुसार, प्रसिद्ध विदुषी उभयभारती के साथ जोड़ा जाता है। उभयभारती मण्डन मिश्र की पत्नी थीं और दोनों को शास्त्रार्थ में शंकराचार्य ने हरा दिया था।

ऐसा लगता है स्वामीजी वहाँ से बड़वाह आकर इन्दौर गये और वहाँ जूनागढ़ के दीवान साहब के मित्र बेडेकर के घर उतरे, पर बेडेकर ने स्वामीजी का ठण्डा स्वागत किया, जैसा कि स्वामीजी के पत्र से विदित होता है। उन्होंने बम्बई से २२ अगस्त, १८९२ के अपने पत्र में दीवान साहब को लिखा था, "इन्दौर के आपके मित्र श्रीबेडेकर की सज्जनता और सौजन्य के संबंध में जितना कम कहा जाय, उतना ही अच्छा ।" इन्दौर में उन्होंने रानी अहिल्या बाई की छत्री देखी। वहाँ से वे अवश्य ही उज्जैन गये होंगे, जो भारत का एक अति प्राचीन और पवित्र तीर्थ-स्थल है। यह एक शक्तिपीठ भी है और राजा

विक्रमादित्य की राजधानी भी रही है, जिन्होंने भारत को विदेशी आक्रान्ता शकों के चंगुल से मुक्त किया था और जिनका राजदरबार कालिदास और वाराहमिहिर जैसे रत्नों से सुशोभित था। यहाँ स्वामीजी ने महाकाल ज्योतिर्लिंग के दर्शन किये होंगे।

वे लौटकर पुनः खण्डवा आ गये। पर इसी बीच उन्होंने कुछ समय एक भंगी-परिवार के साथ बिताया। यह पहला अवसर था, जब वे समाज में अति निम्न माने जानेवाले लोगों के साथ रहे हों। स्वामीजी ने उनकी दयनीय स्थिति देखी, पर साथ ही गरीबी में पलता हुआ उनका विशाल हृदय देखा। वे नीचे कहे जानेवाले लोगों के सौजन्य को देख अभिभूत हो गये। ऊँचे कहानेवाले लोगों के शोषण और अत्याचार से उनलोगों की हुई दुर्दशा का स्मरण कर स्वामीजी के नेत्र गीले हो आये। उन्होंने देखा कि इन बेचारे गरीबों को सब प्रकार के मानवाधिकार से वंचित रखा गया है। पुरोहितों ने जनसाधारण को धर्म के उदात्त तत्त्वों से अनभिज्ञ रखा है, जिससे वे अपने अर्थलाभ के लिए सबका शोषण कर सकें। स्वामीजी के हृदय की यह वेदना दीवान साहब को बम्बई से २२ अगस्त, १८९२ को लिखे पत्र में फूट पड़ी थी—"इस अंचल में एक बात देखकर मुझे बहुत दुःख होता है, वह है संस्कृत और अन्य शिक्षा का नितान्त अभाव। देश के इस भाग के लोग धर्म के नाम पर जो कुछ जानते हैं, वह है खाने-पीने और नहाने को लेकर स्थानीय अन्धविश्वास की एक गठरी; बस, यही उनका सारा धर्म है।" दुष्ट और धूर्त पुरोहितों ने वेदों के नाम पर जो कुछ सिखाया, उसी का अनुसरण ही, स्वामीजी के मतानुसार, जनसाधारण की अधोगति का कारण था। तभी स्वामीजी के मानस में कुछ संकल्प उठा—इन नीच कहे जाने वाले लोगों को उठाकर सबके समकक्ष लाने का, उन्हें भी सबके समान ही अपनी उन्नति के लिए अवसर प्रदान करने का और छुआछूत के कलंक को मिटा देने का।

जब वे खण्डवा लौटे, तो उनका हृदय समाज के इन तिरस्कृत लोगों के दुःख से दुःखी था। जो भी उनसे मिलता उससे वे अपने संकल्प की बात कहते। खण्डवा के अनेक गण्यमान्य लोग उनसे मिलने आये। उनमें वहाँ के बंगाली अधिकारी भी थे। स्वामीजी के शास्त्र-सम्बन्धी और अंग्रेजी साहित्य के ज्ञान को देखकर लोग बड़े प्रभावित हुए। एक दिन वहाँ के सिविल जज बाबू माधवचन्द्र बन्द्योपाध्याय ने स्वामीजी के सम्मान में स्थानीय बंगालीजनों को प्रीति-भोज पर आमंत्रित किया। भोजन से पहले और बाद में कुछ शास्त्र-चर्चा करने की दृष्टि से स्वामीजी अपने साथ उपनिषद्-ग्रन्थावली का एक खण्ड ले निमंत्रित स्थान पर उपस्थित हुए। सबके एकत्र होने पर उन्होंने कतिपय दुरूह स्थलों की आवृत्ति की और ऐसी व्याख्या की, जिससे एक छोटा बच्चा भी उनकी भाषा को समझ ले सके। निमंत्रित व्यक्तियों में बाबू पियारीलाल गांगुली नाम के एक वकील भी थे। उनके संस्कृतज्ञ होने की ख्याति थी, इसलिए सभा में उन्होंने समालोचक का स्थान ग्रहण किया, पर उनके हर प्रश्न का उत्तर देते हुए स्वामीजी ने जिस प्रकार की सरल व्याख्या प्रस्तुत की, उससे अन्ततोगत्वा बाबू पियारीलाल को चुप हो जाना पड़ा। बाद में पियारी बाबू ने हरिदास बाबू के कान में कहा था, "स्वामीजी को देखने से ही ऐसा लगता है कि भविष्य में वे एक विश्वप्रसिद्ध व्यक्ति बनेंगे।" यह बात जब स्वामीजी को बतायी गयी, तो उनके मुखमण्डल पर एक दिव्य आभा चमक उठी और वे बोल उठे, "मैं यह सब कुछ नहीं जानता, पर हाँ मेरे गुरुदेव ठीक यही बात कहते थे—और भी जोर देकर।"

फिर, खण्डवा में ही स्वामीजी के मन में शिकागो में आयोजित होनेवाले विश्व-धर्म सम्मेलन में भाग लेने का स्पष्ट संकल्प फूटा था। जूनागढ़ और पोरबन्दर में उन्होंने पहली बार इस विश्व-धर्म-सम्मेलन के संबंध में सुना था, पर उसमें भाग लेने की कल्पना उनके मन में तब तक स्पष्ट रूप धारण नहीं कर सकी थी। किन्तु खण्डवा में रहते समय उस कल्पना ने एक सुस्पष्ट विचार, या यों कहें, संकल्प का रूप धारण कर लिया। तभी तो जब बातचीत के प्रसंग में हरिदास बाबू ने उन्हें सुझाव दिया कि उन्हें हिन्दू धर्म का प्रतिनिधित्व करने अमेरिका जाना चाहिए, तो वे कह उठे थे, "यदि कोई मुझे जाने का खर्च दे, तो अच्छा होगा; मैं जाऊँगा।" इस संदर्भ में खण्डवा में घटी एक और घटना का भी उल्लेख किया जा सकता है। जब स्वामीजी खण्डवा में थे, तो उनसे मिलने के लिए अक्षयकुमार घोष नामक एक युवक आया। वह नौकरी की तलाश में वहाँ आया था। यह लड़का स्वामीजी से बम्बई में फिर से मिला। उन्होंने उसे जूनागढ़ के दीवान साहब के नाम एक परिचय-पत्र दे दिया। वह युवक बाद में लन्दन चला गया और वहाँ मिस हेनरीता मूलर का कृपापात्र बन गया। मिस मूलर ने उसे गोद भी ले लिया। उसके माध्यम से मिस मूलर ने वाग्मी विवेकानन्द के बारे में जाना, जो तब अमेरिका में थे। मिस मूलर की स्वामीजी में इतनी रुचि हो गयी कि उन्होंने स्वामीजी को इंगलैंड आने का और अपने ही निवास पर ठहरने का निमंत्रण भेजा। इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द को इंग्लैंड ले जाने में घोष नियति के हाथों एक सक्षम यंन्त्र बन गया।

हरिदास बाबू के आग्रहपूर्ण अनुरोध के बावजूद स्वामीजी खण्डवा में और अधिक नहीं रुके। उनके हृदय में अपने पद-दलित और प्रताड़ित देशवासियों की दयनीय स्थिति देख उन्हें देश की मुख्य धारा से जोड़ने का जो संकल्प उठा था, वह अब उन्हें कहीं बैठने नहीं दे रहा था। वे खण्डवा से अपने मित्रों से विदा ले जुलाई, १८९२ के अन्तिम सप्ताह में बम्बई पहुँचे। मध्यप्रदेश में विचरण करते समय उनके हृदय में जो आग सुलग उठी थी, क्या वही उच्च वर्ण के कहलानेवाले लोगों को दी गयी उनकी इस लथाड़ में नहीं उठी है?

"भारतवर्ष के कृषक, चर्मकार, मेहतर तथा ऐसे ही अन्य निम्न जातिवालों में कार्य करने की शक्ति एवं आत्म-विश्वास तुम्हारी अपेक्षा अधिक है। वे युगों से चुपचाप काम करते आये हैं और वे ही देश की सम्पूर्ण सम्पत्ति, बिना चूँ तक किये, कमाते आये हैं। इस सहनशील जनता का तुमने इतने दिनों तक दमन किया है; अब उसके प्रतिकार का समय आ गया है।……

"यदि मजदूर लोग काम करना बन्द कर दें, तो तुम्हें अन्न-वस्त्र मिलना भी बन्द हो जाय। और, तुम उनको नीच जाति के मनुष्य मानते हो और अपनी संस्कृति की शेखी मारते हो! आजीविका के संग्राम में व्यस्त रहने के कारण उन्हें अपने में ज्ञान की जागृति का अवसर नहीं मिला। वे इतने दिनों तक मानव-बुद्धि द्वारा चलनेवाले यंत्र के समान सतत काम करते रहे हैं और चतुर शिक्षित समुदाय ने उनके परिश्रम के फल का सार अंश ले लिया है। ···· पर, अब जमाना बदल गया है। अब उच्च जातिवाले नीच जातिवालों को और अधिक समय तक दबा नहीं सकते, चाहे वे इसके लिए कितनी ही कोशिश क्यों न करें। उच्चतर जातियों का कल्याण अब इसी में है कि वे निम्न जातियों को उनके यथोचित अधिकार प्राप्त करने में सहायता दें।"

"जब जनसाधारण जाग उठेंगे, तब वे अपने

ऊपर किये जानेवाले तुम्हारे अत्याचारों को जान लेंगे और तब उनके मुँह की एक फूँक से ही तुम पूरे के पूरे उड़ जाओगे। उन्होंने ही तुम्हारे बीच सभ्यता का प्रवेश कराया है और वे ही उस सभ्यता के ढाहनेवाले होंगे। इस बात को याद करो कि 'गॉल' (Gauls) लोगों के हाथों से शक्तिशाली पुरातन रोमन-सभ्यता धूलि में मिला दी गयी। इसी कारण मैं कहता हूँ, इन निम्न जातियों को विद्या और संस्कृति प्रदान करके इनको निद्रा से जगाओ। जब वे जाग जायँगे—और एक दिन वे जागेंगे अवश्य,—तब वे अपने प्रति की हुई तुम्हारी हितकारी सेवा को भूलेंगे नहीं और तुम्हारे प्रति कृतज्ञ रहेंगे।

भारतवर्ष के इन गरीब-निम्न जातिवालों के प्रति हमारे जो भाव हैं, उनका विचार करने से मेरे अन्तःकरण में कितनी पीड़ा होती है! उन्हें कोई अवसर नहीं मिलता, उनके लिए बचने का कोई रास्ता नहीं है और ऊपर चढ़ने का कोई मार्ग नहीं।... वे प्रतिदिन अधिकाधिक नीचे डूबते जा रहे हैं; निर्दय समाज के द्वारा अपने ऊपर होनेवाले आघातों का वे अनुभव तो करते हैं, पर वे जानते नहीं कि ये आघात कहाँ से आ रहे हैं। वे भी दूसरों के समान मनुष्य हैं, इस बात को वे भूल गये हैं और इसका परिणाम हुआ है गुलामी या दासत्व। गत् कुछ वर्षों के भीतर विचारशील पुरुषों ने इस बात को देख लिया है, पर दुर्भाग्यवश वे इसका दोष हिन्दू धर्म के मत्थे मढ़ते हैं, और उनको तो सुधार का एक यही उपाय दिखाई देता है कि संसार के इस महत्तम धर्म को कुचल दिया जाय। मेरे मित्रो, मेरी बात को ध्यान से सुनो, ईश्वर की दया से मैंने रहस्य का पता लगा लिया है। दोष धर्म का नहीं है। इसके विपरीत, तुम्हारा धर्म तो यही सिखाता है कि प्रत्येक प्राणी स्वयं तुम्हारी आत्मा का ही नाना रूपों में विकास है। पर दोष है व्यावहारिक आचरण का अभाव, सहानुभूति का अभाव—हृदय का अभाव। इस वस्तुस्थिति को दूर करना है—धर्म का नाश करके नहीं वरन्, हिन्दू धर्म के महान उपदेशों के अनुसार आचरण करके और बौद्धमत, जो हिन्दू धर्म का तर्कसंगत विकास-रूप है, उसकी अद्‌भुत सहानुभूति को इस आचरण के साथ युक्त करके।... लाखों स्त्री-पुरुष पवित्रता के अग्निमंत्र से उद्दीप्त होकर, ईश्वर के प्रति अटल विश्वास से शक्तिमान बनकर और गरीबों, पतितों एवं पददलितों के प्रति सहानुभूति से सिंह के समान साहसी बनकर इस सम्पूर्ण भारत देश में सर्वत्र उद्धार के सन्देश का, सहायता के सन्देश का, सामाजिक उत्थान के सन्देश का, समानता के सन्देश का प्रचार करते हुए विचरण करेंगे।"

वर्त्तमान समय में तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम एक गाँव से दूसरे गाँव को जाओ और लोगों को समझाओ कि अब और अधिक समय तक आलस्यपूर्वक बैठे रहने से काम नहीं चलेगा। उन्हें उनकी यथार्थ स्थिति का परिचय कराओ और कहो, 'ऐ भाइयो! सब लोग उठो! जागो! अब और कितनी देर तक सोते रहोगे? । अब तक ब्राह्मणों ने धर्म पर एकाधिपत्य कर रखा है; परन्तु जब वे काल की प्रबल तरंग के विरुद्ध एकाधिपत्य नहीं रख सकते, तब चलो और ऐसे प्रयत्न करो कि देश भर में प्रत्येक को वह धर्म प्राप्त हो जाय। उनके मन में यह बैठा दो कि ब्राह्मणों के समान उनका भी धर्म पर वही अधिकार है। सभी को, चाण्डाल तक को भी, इन्हीं जाज्वल्यमान मंत्रों का उपदेश करो।... यदि तुम ऐसा नहीं कर सकते, तो धिक्कार है तुम्हारी शिक्षा और संस्कृति को, धिक्कार है तुम्हारे वेदों और वेदान्त के अध्ययन को!"

"ऐ भारत के उच्च जातिवालो! तुम चाहे

जितना भी अपने को आर्य-पूर्वज की सन्तान कहने का प्रदर्शन करो, चाहे जितना भी प्राचीन भारत के वैभव का रात-दिन गुणगान करो और अपने जन्म के अभिमान में अकड़ते रहो,—पर क्या तुम ऐसा समझते हो कि तुम सजीव हो? तुम तो दस सहस्र वर्षों से रखी हुई मृत देह (Mummies) जैसे ही हो! भारतवर्ष में जो थोड़ी-बहुत जीवन-शक्ति अब भी है, वह उन्हीं में मिलेगी, जिन्हें तुम्हारे पूर्वज 'चलते-फिरते, सड़े, गंदे मांसपिण्ड मानकर घृणा करते थे; और, यथार्थ में चलते हुए मुरदे' तो तुम लोग हो। तुम्हारे घर-द्वार, तुम्हारे साज-समान ऐसे निर्जीव और पुराने हैं कि वे अजायब-घर के नमूनों के समान दिखाई देते हैं; और तुम्हारे रीति-रिवाज, चाल-ढाल और रहन-सहन को देखकर कोई भी यही सोचेगा कि वह 'नानी की कहानी' सुन रहा है।... ऐ भारत के उच्च वर्गवालो, तुम तो माया के इस संसार में मानों इन्द्रजाल हो, रहस्य हो, मरुमरीचिका हो! एकत्र मिश्रित भूतकालिक क्रियाओं के तुम केवल द्योतक मात्र हो। तुमको अभी भी वर्त्तमान समय में कोई देख रहा है—यह तो मानो केवल अजीर्ण के कारण होनेवाला भयानक दुःस्वप्न है। तुम तो भविष्य के शून्याकार, सारहीन, अस्तित्व-रहित पदार्थ हो। स्वप्न-राज्य के नागरिक! तुम लोग और अधिक समय तक क्यों भटक रहे हो? तुम भूतकालीन भारत के मृत शरीर के मांसहीन, रक्तहीन अस्थिकंकाल जैसे हो—तुम शीघ्र ही अपने को मिट्टी में मिलाकर हवा में अदृश्य क्यों नहीं हो जाते? तुम्हारी अस्थिमयी अँगुलियों में तुम्हारे पूर्वजों के संग्रह किये हुए रत्न की कुछ अमूल्य मुद्रिकाएँ हैं और बहुत ही प्राचीन सम्पत्ति की पिटारियाँ तुम्हारे दुर्गन्धयुक्त मृत शरीर की छाती से चिपकी हुई सुरक्षित रखी हुई हैं। अब तक तुमको इन्हें दूसरों को सौंप देने का अवसर नहीं मिला था। अब ···प्रतिबन्ध-रहित शिक्षा एवं ज्ञान-प्रसार के दिनों में, उन सब वस्तुओं को उत्तराधिकारियों को सौंप दो। यह बात यथासम्भव शीघ्र कर डालो। तुम अपने को शून्य में लीन करके अदृश्य हो जाओ और अपने स्थान में 'नव भारत' का उदय होने दो। उसका उदय हल चलानेवाले किसानों की कुटिया से, मछुए, मोचियों और मेहतरों की झोपड़ियों से हो। बनिये की दुकान से, रोटी बेचनेवाले की भट्ठी के पास से वह प्रकट हो। कारखानों, हाटों और बाजारों से वह निकले। वह 'नव भारत' अमराइयों और जंगलों से पहाड़ों और पर्वतों से प्रकट हो। ये साधारण लोग सहस्रों वर्ष अत्याचार सहते आये हैं - बिना कुड़बुड़ाये उन्होंने यह सब सहा है और परिणाम में उन्होंने आश्चर्य-कारक धैर्य-शक्ति प्राप्त कर ली है। वे सतत विपत्ति सहते रहे हैं, जिससे उन्हें अविरल जीवन-शक्ति प्राप्त हो गयी है। मुट्ठी-भर अन्न से पेट भरकर वे संसार को कँपा सकते हैं; उनको तुम केवल आधी रोटी दे दो और देखोगे कि सारे संसार का विस्तार उनकी शक्ति के समावेश के लिए पर्याप्त न होगा। उनमें 'रक्तबीज' की अक्षय जीवन-शक्ति भरी है। इसके अतिरिक्त, उनमें पवित्र और नीतियुक्त जीवन से आनेवाला वह आश्चर्यजनक बल है, जो संसार में अन्यत्र नहीं मिलता। ऐसी शान्ति, ऐसा सन्तोष, ऐसा प्रेम और चुपचाप सतत कार्य करने की ऐसी शक्ति तथा कार्य के समय इस प्रकार सिंह-बल प्रकट करना—यह सब तुम्हें अन्यत्र कहाँ मिलेगा? भूतकाल के कंकाल! देखो, तुम्हारे सामने तुम्हारे उत्तराधिकारी खड़े हैं—भावी भारतवर्ष खड़ा है! अपने खजाने की उन पिटारियों को और उन रत्न-जटित मुद्राओं को उनके बीच जितनी जल्दी हो सके, फेंक दो और हवा में मिल जाओ, फिर कभी दिखाई न दो—केवल अपने कानों को खोले रखो। अपने अदृश्य होते ही तत्काल तुम पुनर्जात

भारतवर्ष का वह प्रथम उद्घोष सुनोगे: जिसकी करोड़ों गर्जनाओं से सारे विश्व में यही पुकार गूँजती रहेगी—'वाहे गुरु की फतह !"

तो, वह मध्यप्रदेश ही है, जिसने किशोर नरेन्द्रनाथ दत्त की देह, मन और बुद्धि को सबल और हृष्ट-पुष्ट किया; वह मध्यप्रदेश ही है, जिसने नरेन्द्र में छिपी विलक्षण प्रतिभा के विभिन्न आयामों को स्नेहपूर्वक विकसित किया तथा वह भी मध्यप्रदेश ही है, जिसने नरेन्द्र का स्वागत स्वामी विवेकानन्द के रूप में किया और उनमें देश की दुरवस्था को दूर करने हेतु शिकागो विश्व-धर्म-सम्मेलन में भाग लेने का संकल्प भरा !

[प्रस्तुत लेख रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर द्वारा प्रकाशित अबुझमाड़ ग्रामीण विकास प्रकल्प स्मारिका से साभार ग्रहण किया गया है। —सं०]

विवेकानन्द नाम राजस्थान की देन

डॉ० ओंकार सक्सेना, जयपुर

राजस्थानियों के लिए यह गौरव का विषय है कि स्वामीजी ने राजस्थान के अनेक स्थानों में भ्रमण किया था। विश्व धर्म-महासभा में स्वामीजी को भेजने के सौभाग्य के भागीदार हम राजस्थान-वासी भी हैं। वस्तुत: मद्रास ने स्वामीजी को खोजा और राजस्थान ने उन्हें आचार्यत्व प्रदान कर विश्व धर्म-महासभा में भेजा था। 'स्वामी विवेकानन्द,' यह नाम भी राजस्थान की ही देन है।

अलवर में लगभग दो महीने ठहरने के पश्चात् स्वामीजी पाण्डुपोल में श्री महावीर हनुमानजी के दर्शन कर अलवर से साथ आये भक्तों से विदा लेकर अकेले ही घूमते-घूमते जयपुर आ पहुँचे। एक असाधारण व्याकरणवेत्ता से स्वामीजी का परिचय राजभवन में हुआ था। स्वामीजी ने उनसे पाणिनि-रचित अष्टाध्यायी का अध्ययन फिर से प्रारम्भ कर दिया; जिसे उन्होंने दो वर्ष वाराह-नगर में भी पढ़ा था। पंडितजी के लागातार तीन दिन प्रयत्न करने पर जब वे एक भी सूत्र का भाष्य न समझ सके तो पंडितजी ने कहा, "स्वामीजी, मेरे यहाँ अध्ययन करने से आपको विशेष लाभ न होगा, क्योंकि तीन दिन लगातार चेष्टा करके भी मैं आपको एक सूत्र भी न समझा सका।" स्वामी विवेकानन्द शास्त्रीजी का उलाहना सुनकर लज्जित हुए और उन्होंने मन में दृढ़ संकल्प किया, "जब तक सूत्र का अर्थ समझ न लूँगा, तब तक अन्न-जल ग्रहण न करूँगा।" कहना न होगा स्वामीजी ने दो सप्ताह में ही अष्टाध्यायी की उन सभी समस्याओं का समाधान कर लिया था, जिन्हें कि वह समझना चाहते थे। किसी व्यक्ति ने इस संदर्भ में सन्देहवश प्रश्न किया तो स्वामीजी ने अधिकारी के समान कहा, "योगी के लिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। आत्मा की सारी शक्ति को केन्द्रीभूत करके उनका प्रयोग किसी एक विषय पर करने से त्रिलोक में ऐसा कौन सा रहस्य है, जो अवगत न हो सके? स्वामी विवेकानन्द ने स्वयं एक दुष्कर विषय पर अपनी सारी शक्ति केन्द्रीभूत

व आत्मसात करके जो दिखाया है, वह हम सबके लिए अनुकरणीय प्रयोजन है। आचार्यों द्वारा शिक्षा इसी प्रकार दी जाती रही है।

जयपुर प्रवास काल में स्वामी अखण्डानन्द स्वामी विवेकानन्द को खोजते हुए आ पहुँचे थे। जयपुर में इन्होंने सुना कि राजभवन में एक ऐसे संन्यासी ठहरे हुए हैं जो दर्शन एवं भाषाओं पर अधिकार रखनेवाले विद्वान हैं। स्वामी अखण्डानन्द यह धारणा लेकर कि स्वामी विवेकानन्द के अतिरिक्त यह सन्त कोई अन्य नहीं हो सकते हैं, दर्शनार्थ राजभवन जा पहुँचे, किन्तु आश्चर्य ! स्वामीजी क्रुद्ध हो गये, "तुमने मेरा पीछा करके अच्छा नहीं किया, शीघ्र ही इस स्थान को छोड़ कर चले जाओ।" स्वामी अखण्डानन्द दु:खी मन से जयपुर छोड़ कर चले तो गये परन्तु मन में यही सोचते रहे, 'गुरु भाइयों के प्रति इस प्रकार निर्मम होने का अवश्य ही कोई महान उद्देश्य होगा।'

एक दिन स्वामी विवेकानन्द भक्तों के साथ धार्मिक चर्चा कर रहे थे। इसी समय पं. सूर्यनारायण भी सम्मिलित हो गये। बातों ही बातों में पण्डितजी के मुँह से निकला, "मैं एक वेदान्ती हूँ। मैं अवतार पुरुषों की विशेष आध्यात्मिक शक्ति में विश्वास नहीं रखता। पौराणिक अवतारों में भी मेरा विश्वास नहीं है। हम सभी ब्रह्म हैं। मुझमें और किसी अवतार में क्या अन्तर है ?" स्वामीजी ने तत्काल ही चुटकी लेते हुए कहा, "आपकी बात सत्य है, परन्तु हिन्दू लोग मत्स्य, कच्छप, वाराह को भी अवतार कहते हैं। बतलाइए इनमें से आप कौन हैं ?" सभा-मण्डल खिलखिलाकर हँस पड़ा और पं० सूर्यनारायण सकपका गये।

जयपुर राज्य के प्रधान सेनापति सरदार हरिसिंह अनन्य भक्त हो गये थे। हरिसिंह का मूर्ति-पूजा में विश्वास डगमगाया हुआ था। एक दिन राजपथ पर श्रीकृष्ण की झाँकी जा रही थी। स्वामीजी एकाएक इन्हें, छूकर कह उठे, "देखिए, श्रीभगवान का जीता-जागता स्वरूप !" स्वामीजी के स्पर्श ने सरदार हरिसिंह में गहन भावान्तर पैदा कर दिया और वह निर्निमेष नेत्रों से स्वयं को खो बैठे। अन्तर में स्वानुभूति होने पर गदगद कण्ठ से सादर बोले, "स्वामीजी, अनेक बार तर्क करके इस विषय को समझ नहीं सका था, आज आपकी कृपा से अपूर्व दर्शन प्राप्त हो गया।" दर्शन वास्तव में यदा-कदा दर्शनीय भी हो सकता है। अनुभूति केवल उपयुक्त पात्र को सिद्ध गुरु द्वारा स्पर्श, वचन अथवा विचार द्वारा कराई जा सकती है।

जयपुर से अजमेर होते हुए स्वामी विवेकानन्द आबू पर्वत पहुँचे। वहाँ स्वामीजी चम्पा गुफा में ठहरे थे। आबू में कोटा दरबार के एक मुसलमान वकील साहब से स्वामीजी का परिचय हुआ था, वह स्वामीजी को साग्रह अपने घर ले आये थे। उदार मुसलमान वकील साहब ने स्वामीजी का परिचय कोटा के प्रधानमंत्री ठा० फतेह सिंह तथा खेतड़ी दरबार के सचिव मुन्शी जगमोहन लाल से करवाया था। मुन्शी पहली बार जब स्वामीजी से मिले थे तब वह खाट पर आखें मूदें चिन्तन कर रहे थे। वह केवल एक कौपीन पहने हुए थे। मुन्शीजी ने सोचा, "यह तो एक साधारण भटकनेवाले संन्यासी हैं, साधु के भेष में चोर या गिरहकट भी होते हैं।" स्वामीजी इस बीच उठ बैठे और बातें करने लगे। जगमोहन लाल ने पूछा, "स्वामीजी आप हिन्दू संन्यासी होकर मुसलमान के घर पर हैं, आपके भोजन आदि को यह मुसलमान छू सकते हैं।" स्वामीजी ने तपाक से कहा, 'महाशय, आपके ऐसा कहने का मतलब क्या है ? मैं संन्यासी हूँ, मैं सभी सामाजिक आचार-व्यवहार से परे हूँ। मैं एक मेहतर के साथ भी बैठकर भोजन करता हूँ। यह तो ईश्वर का निर्देश है, अत: मैं निर्भय हूँ। शास्त्र का भी मुझे डर नहीं है, क्योंकि शास्त्र तो इसका समर्थन करते हैं। परन्तु हाँ, मुझे भय है आप जैसे कुछ अंग्रेजी जानने

वालों से। आप लोग शास्त्र व भगवान की परवाह नहीं करते, मैं सर्वभूतों में ब्रह्म का ज्ञान रखता हूँ। फिर मेरे लिए ऊँच-नीच या स्पृश्य-अस्पृश्य क्या है ?" शिव-शिव कहते हुए स्वामी जी भावमग्न हो गये थे। मुन्शी जगमोहन लाल उनसे बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने खेतड़ी नरेश के मन में स्वामीजी से मिलने की लालसा उत्पन्न कर दी।

खेतड़ी के राजा अजीत सिंह का निमंत्रण पाकर स्वामीजी जगमोहन लाल के साथ राजघर पधारे। खेतड़ी नरेश ने सहृदयता से स्वागत किया और धर्मचर्चा में अग्रसर हुए। धर्मनिष्ठ राजा अजीत सिंह ने स्वामीजी से पूछा, "स्वामीजी, यह जीवन क्या है ?" तत्काल ही स्वामी विवेकानन्द ने गम्भीर अनुभूतियों को शब्दों में ढालते हुए कहा, "एक अन्तर्निहित शक्ति मानो लगातार अपने स्वरूप में व्यक्त होने के लिए अविराम चेष्टा कर रही है और बाह्य प्रकृति उसे दबा रही है, इसी चेष्टा का नाम है जीवन।"

अच्छा महाराज, शिक्षा क्या है ? इस प्रश्न का विवेचन करते हुए स्वामीजी ने कहा था, विचारों का स्नायु से घनिष्ठ सम्बंध करने का नाम शिक्षा है। जब तक कोई भाव मन में ऐसे दृढ़ संस्कार के रूप में स्थापित न हो जाए तब तक वह भाव वास्तव में मन की अपनी सम्पत्ति नहीं कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए, श्रीरामकृष्ण देव के हाथ धातु के स्पर्श करते ही ऐंठने लगते थे। यह थी उनकी कांचन त्याग सिद्धि। उनका सम्पूर्ण जीवन मानो पवित्रता का विकास और मानव मन के लिए सर्वोत्कृष्ट शिक्षा के आदर्श का दृष्टान्त था।

एक अवसर पर विधान या नियम क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए स्वामीजी ने कहा था, "मन जिस प्रणाली से कतिपय वस्तुओं को धारण करता है, वही विधान है वही नियम है। बाह्य जगत में नियम की कोई सत्ता नहीं है। घटनाओं का ज्ञान हम लोगों के मन में जिस प्रकार होता है, उसी ज्ञान को नियम कहते हैं। मन अपने संस्कारों को विभिन्न किन्तु सजातीय श्रेणी में विभाजित करता है। प्रत्येक श्रेणी के अन्तर्गत विषयों के साधारण लक्षण —एक-एक नियम के आकार में प्रकाशित होते हैं। इस प्रकार बाह्य वस्तु के संस्कारों पर बुद्धि की प्रतिक्रिया से प्रत्येक नियम की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार किसी अन्य दिन 'सत्य क्या है ?' राजा के इस प्रश्न का विवेचन करते हुए स्वामीजी ने कहा था, "ज्यों-ज्यों मनुष्य में ज्ञान की वृद्धि होती जाती है, त्यों-त्यों वह एक सत्य को छोड़ कर दूसरे सत्य को ग्रहण करता जाता है। इस अवस्था में चरम सत्य की प्राप्ति नहीं होती है। चरम सत्य की प्राप्ति हो जाने पर सापेक्षित सत्य ज्ञान का लोप हो जाता है।"

धर्म-प्राण राजा अजीत सिंह के विशेष अनुरोध पर स्वामीजी ने खेतड़ी जाना स्वीकार कर लिया। खेतड़ी आकर राजा अजीत सिंह व उनके सचिव जगमोहन लाल ने स्वीमाजी का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया था। गुरुभक्त शिष्य के अनुपम आग्रह को स्वीकार कर स्वामीजी को कुछ दिनों राजमहल में ही निवास करना पड़ा था।

एक संध्या खेतड़ी नरेश अपने दरबारियों के साथ महल की छत पर बैठे हुए थे। नर्तकी का वीणा वादन होगा। स्वामी विवेकानन्द प्रासाद में ठहरे हुए थे। खेतड़ी नरेश ने स्वामीजी को आग्रह पूर्वक बुलवाया। स्वामीजी सभा में आये। कुछ धर्म-चर्चा हुई। नर्तकी ने अपना साज सँवारा। "स्वामीजी आप रुकिये, उच्च स्तर का भक्ति संगीत सुनकर आप अवश्य ही आनन्दित होंगे।" स्वामीजी पुनः बैठ गये। संगीत की स्वर-लहरी पर नर्तकी ने हृदय की करुणा उड़ेल, विनती भरे स्वर भक्त-शिरोमणि सूरदास की इन पंक्तियों में बहाए ... ...

प्रभु मेरे अवगुन चित न धरो।
समदरसी है नाम तिहारो चाहे तो पार करो।
इक लोहा पूजा में राखत इक घर वधिक परो।
पारस गुन अवगुन नहिं चितवन कंचन करत खरो।

मधुर संगीत ने स्वामीजी को भाव राज्य में प्रतिष्ठित कर दिया। उनके मुख से निकला, ठीक ही तो है, 'सर्व खल्विदं ब्रह्म'। एक पतिता में उन्हें आध्यात्मिक शक्ति का दर्शन मिल गया। वह कह उठे माँ मैंने आज अपराध किया है, आपकी अवहेलना करके उठकर चला जा रहा था। आपके गीत से मुझे चैतन्य हुआ है।

खेतड़ी राज्य सभा के पंडित नारायण दास विद्वान माने जाते थे। उन्होंने जब पंतजलि महा-भाष्य का अध्यापन समाप्त किया तो स्वामीजी से कहा, "स्वामीजी मैं जो कुछ सिखा सकता था, वह समाप्त हो गया। यदि मैं आपको स्वयं न देख लेता तो शायद मुझे यह विश्वास नहीं होता कि आप जैसी प्रतिभा मनुष्य में संभव है।" स्वामीजी अपने उन अध्यापक के प्रति सदा ही श्रद्धा रखते रहे हैं।

खेतड़ी के राजा के कोई पुत्र न था। एक दिन अपने गुरुदेव के समक्ष उन्होंने मनोद्वेग को प्रकट किया और प्रार्थना की मुझे ऐसा आर्शीर्वाद दीजिए कि मुझे पुत्र सन्तान हो। स्वामीजी अपने शिष्य के आवेदन की उपेक्षा न कर सके और बोले, "अच्छा, श्री रामकृष्ण देव की कृपा से आपकी मनोकामना पूर्ण होगी।" कुछ ही दिनों बाद स्वामीजी खेतड़ी छोड़कर भ्रमण को निकल पड़े और दो वर्षों तक गुजरात, काठियावाड़, महाराष्ट्र तथा दक्षिण भारत के अनेकानेक स्थानों का भ्रमण करते रहे। दक्षिण भारत के शिष्यों ने उत्साह के साथ स्वामीजी को अमेरिका धर्म महासभा शिकागो भेजने की पूरी तैयारी कर ली थी। उसी समय मुन्शी जगमोहन लाल मद्रास आ पहुँचे और खेतड़ी में राजपुत्र के अन्न-प्राशन संस्कार में आशीर्वाद देने के लिए चलने का आग्रह करने लगे। स्वामीजी एवं मद्रासी शिष्यों ने अनेक प्रयासों से असमर्थता प्रकट की, परन्तु जगमोहन लाल एक ना माने, बोले, "गुरुदेव, कम से कम एक दिन के लिए आपको खेतड़ी अवश्य चलना होगा नहीं तो नरेश के हृदय पर बड़ा आघात पहुँचेगा। अमेरिका जाने की व्यवस्था के लिए आपको सोचने की आवश्यकता नहीं है। महाराज सब व्यवस्था कर देंगे। आप मेरे साथ खेतड़ी चलें। अन्त में, स्वामीजी ने खेतड़ी जाना स्वीकार कर लिया। यह निश्चय हुआ कि वे बम्बई से जहाज पर चढेंगे। खेतड़ी उत्सव समाप्त होने पर स्वामीजी राजा से विदा लेकर जगमोहन लाल के साथ बम्बई पहुँचे। प्रथम श्रेणी का केबिन जगमोहन लाल ने पक्का कर दिया था। राजगुरु के यथोचित बहुमूल्य रेशमी चोगा व पगड़ी उनके लिए बनवायी थी जिसे हम स्वामी-जी के बहुप्रकाशित शिकागो सम्मेलन चित्र में देखते हैं।

नरेन्द्र जिस नाम से विश्व-विख्यात हुए, स्वामीजी को दिया वह विवेकानन्द नाम राजस्थान की ही देन है। इससे पहले स्वामीजी अपना परिचय विविदिशानन्द नाम से दिया करते थे। इस लुप्त सत्य का विवेचन पं० झावरमल्ल लिखित पुस्तक 'खेतड़ी नरेश और विवेकानन्द' में मिलता है। वह लिखते हैं, 'यह बात शायद बहुत कम लोग जानते होंगे कि स्वामीजी का सर्वजन विदित विवेकानन्द नाम रखनेवाले राजा जी बहादुर ही थे। स्वामीजी अपना नाम विविदिशानन्द लिखते थे। यह बात उनके पुराने पत्रों से भी प्रमाणित है। खेतड़ी की यात्रा में एक दिन स्वामीजी के पास राजाजी बैठे थे। उन्होंने हँसते-हँसते कहा, महाराज आपका नाम बड़ा कठिन है। बिना टीकाकार की सहायता के साधारण लोगों की समझ में उसका मतलब नहीं आ सकता। उच्चारण करना भी सहज नहीं।

इसके अतिरिक्त अब तो आपका विविदिशा काल भी समाप्त हो चुका। स्वामीजी ने राजाजी के युक्तियुक्त परामर्श को सुनकर कहा, आप किस नाम को पसन्द करते हैं ? राजाजी ने कहा, मेरी समझ में आपके योग्य नाम है "विवेकानन्द"। स्वामीजी ने परमानुरक्त राजाजी की इच्छा के अनुसार उस दिन से अपना नाम 'विवेकानन्द' रख लिया।

शिकागो में समायोजित धर्म-महासभा में स्वामी विवेकानन्द द्वारा हिन्दू धर्म के योग्यतापूर्ण प्रतिनिधित्व से भारत का मुखोज्जवल करने के उपलक्ष्य में राजाजी अजीत सिंह बहादुर खेतड़ी ने इसी विशेष उद्देश्य के निमित्त आयोजित राजसभा में एक अभिनन्दन-पत्र पारित कर उसकी बीस मुद्रित प्रतियाँ स्वामीजी को भेजी थी। अजित सिंह ने अमेरिका में हिन्दू धर्म का गौरव बढ़ाने के लिए हृदय से धन्यवाद देतें हुए लिखा था "मैं नहीं समझता हूँ कि भाषा की स्वाभाविक आपूर्तियों द्वारा प्रस्तुत बाधाओं के बावजूद हिन्दू धर्म के मूल सिद्धान्तों को अंग्रेजी भाषा के माध्यम से आपसे भी अधिक स्पष्ट एवं यथार्थता के साथ व्यक्त किया जा सकता था। स्वामीजी ने अपने प्रिय शिष्य अजीत सिंह के अभिनन्दन-पत्र का उत्तर एक बहुत लम्बे पत्र में देकर उपदेश दिया था, 'हे राजन, आप वेदान्त के उपदेशों का पालन कीजिए। सर्वोपरि सर्वभूतों में समस्त वस्तुओं में इस समज्ञान रूप महान-उपदेश का पालन कीजिए। सर्वभूतों' में उसी एक भगवान को अवस्थित देखिए। यही मुक्ति का पथ है, वैषम्य ही बंधन का मार्ग है। कोई व्यक्ति या कोई जाति बाह्य एकत्व ज्ञान के बिना बाह्य स्वाधीनता प्राप्त नहीं कर सकती है। और मानसिक शक्तियों के एकत्व ज्ञान के बिना मानसिक स्वाधीनता का लाभ भी उसे नहीं हो सकता है। अमेरिका से लौटकर स्वामीजी भारत के विभिन्न स्थानों पर अपने देशवासियों के उद्वेलित हृदयों को तृप्त करते हुए खेतड़ी भी पहुँचे थे। स्वामी विवेकानन्द ने अपने अभिनन्दन समारोह में वेदान्त पर दिये हुए एक छोटे भाषण का समापन यह कहकर दिया था '-उपनिषद अपनी महिमा में उद्भासित हों और विभिन्न सम्प्रदायों में विवाद की इति हो जाय।" ●

[लेखक की पुस्तक 'श्री रामकृष्ण विवेकानन्द प्रसंग' से साभार—सं०]

गाजीपुर में स्वामी विवेकानन्द

स्वामी ब्रह्मेशानन्द

रामकृष्ण मिशन, वाराणसी

प्रत्येक महापुरुष के जीवन में साधना एवं प्रारंभिक चरित्र निर्माण के काल के बाद एक अन्तरिम काल उपस्थित होता है। यह अनिश्चितता एवं अन्तर्द्वन्द्व का काल कष्टप्रद होते हुए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। विद्यार्थी, शिष्य, अथवा साधक के रूप में अर्जित चारित्रिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक संपदा का उपयोग भविष्य में किस प्रकार होगा, उनका परवर्ती दीर्घ जीवन किस दिशा में परिचालित होगा इसका निर्णय इसी अल्प किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण काल द्वारा निर्धारित होता है। श्री रामकृष्ण की महासमाधि के बाद तीर्थाटनादि में व्यतीत किया गया एक वर्ष का समय माँ सारदा के जीवन का इसी तरह का अन्तरिम काल था। गुरुदेव के देहावसान के बाद परिव्राजक जीवन का उत्तरार्ध स्वामी विवेकानन्द के जीवन का वह अनिश्चित समय था, जिसमें उनकी भावी जीवन-धारा की दिशा निर्धारित हुई थी। इसी अन्तराल में वे २१ जनवरी १८९० को गाजीपुर पहुँचे थे और लगभग ढाई महीने वहाँ रहे थे। उन्होंने गाजीपुर के प्रसिद्ध सन्त पवहारी बाबा के बारे में

पहले ही सुन रखा था। अतः परिव्रजन करते हुए जब वे इलाहाबाद पहुँचे तो स्वाभाविक ही उनके मन में पवहारी बाबा के दर्शनों की इच्छा जागी और वे गाजीपुर पहुँच गये। सौभाग्य से स्वामीजी के इस प्रवास का विस्तृत विवरण हमें उन्हीं के शब्दों में, पत्रों एवं वर्तालापों के माध्यम से प्राप्त है, तथा वह स्वामीजी के जीवन के इस काल के गुरुत्व को स्पष्ट रूप से प्रकट करता है।

पवहारी बाबा गाजीपुर शहर से कुछ मील दूर दक्षिण गंगा के किनारे एक मकान में रहते थे जो चारों ओर ऊँची-ऊँची दीवारों से घिरा था। बाबाजी विरले ही किसी से मिलते, अथवा वार्तालाप करते। यही कारण है कि स्वामीजी को उनसे साक्षात्कार करने के लिए लगभग दस-बारह दिनों की प्रतीक्षा करनी पड़ी। वे उनके वास-स्थान तक जाते, घन्टों बाहर बैठे रहते और असफल मनोरथ वापस लौट जाते। उनके पत्रों से यह पता चलता है कि उनका प्रारंभिक उद्देश्य केवल पवहारी बाबा के दर्शन एवं उनसे कुछ वार्तालाप करना मात्र ही था, क्योंकि जब कई दिनों तक वे बाबाजी के दर्शन प्राप्त नहीं कर सके तो उन्होंने शीघ्र ही गाजीपुर त्यागकर वाराणसी के लिए प्रस्थान करना लगभग निश्चित कर लिया था। शुक्रवार ३१ जनवरी १८९० के पत्र में स्वामीजी लिखते हैं "... रविवार को वाराणसी धाम के लिए प्रस्थान करूँगा। यहाँ के लोग मुझे नहीं छोड़ रहे हैं, नहीं तो बाबाजी के दर्शन की अभिलाषा तो मेरी समाप्त हो चुकी है। आज ही मैं चला जाता। अस्तु रविवार को प्रस्थान कर रहा हूँ।"[1]

लेकिन, अचानक बाबाजी के दर्शन हो गये और सारा कार्यक्रम बदल गया। स्वामीजी बाबाजी के व्यक्तित्व, ज्ञान, भक्ति, विनम्रता एवं अद्‌भुत तितीक्षा से अत्यन्त प्रभावित हुए एवं उन्हें लगा कि इस महापुरुष से भी कुछ सीखा जा सकता है। बाबाजी ने भी कुछ आश्वासन दिया और स्वामीजी गाजीपुर ही ठहर गये। ४ फरवरी १८९० के पत्र में स्वामीजी प्रमदादास मित्र को लिखते हैं: "बड़े भाग्य से बाबाजी का दर्शन हुआ। वास्तव में वे महापुरुष हैं। बड़े आश्चर्य की बात है कि इस नास्तिकता के युग में भक्ति एवं योग की अद्‌भुत क्षमता के वे अलौकिक प्रतीक हैं! मैं उनकी शरण में गया और उन्होंने मुझे आश्वासन दिया, जो हर एक के भाग्य में नहीं था। बाबाजी की इच्छा है कि मैं कुछ दिन यहाँ ठहरूँ, वे मेरा कल्याण करेंगे।"[2] और, सात फरवरी "जब कभी मैं हठ करता हूँ, तो वे मुझे ठहरने के लिए कहते हैं। आशा में अटका पड़ा हूँ।"[3] इस बीच स्वामीजी कमर के दर्द से पीड़ित थे और वह अब इतना बढ़ गया कि वे कुछ दिनों तक बाबा जी के पास जाने में असमर्थ हो गये।

इन अवसरों पर स्वयं बाबाजी स्वामीजी के पास किसी को भेजकर उनके स्वास्थ्य की खबर लेते थे, लेकिन जब बहुत दिन बीतने के बाद भी स्वामीजी के बाबाजी से राजयोग सीखने एवं उनके ज्ञान भंडार से कुछ प्राप्त करने में असफल ही रहे तो एक दिन उन्होंने सोचा कि संभवतः बाबाजी से दीक्षा ग्रहण करने पर इसका पथ सुगम हो जाएगा। जब यह निर्णय स्थिर हो गया तथा दूसरे दिन दीक्षा ग्रहण करना निश्चित कर लिया, उस दिन रात्रि को एकाकी खाट पर लेटे स्वामीजी इन्ही बातों का चिन्तन कर रहे थे, तब अचानक उन्होंने श्रीरामकृष्ण को अपनी दाहिनी ओर उपस्थित देखा। श्री रामकृष्ण स्नेह एवं वेदनापूर्ण नेत्रों से स्वामीजी को एकटक देखते रहे। दो तीन घंटे तक रहने के बाद श्रीरामकृष्ण अचानक अदृश्य हो गये। इस दर्शन से स्वामीजी ने बाबाजी से दीक्षा लेने का संकल्प स्थगित कर दिया। दो तीन दिन बाद पुनः यह संकल्प मन में जागा।

पुनः श्री रामकृष्ण का आविर्भाव हुआ और स्वामीजी को संकल्प त्यागना पड़ा। इस प्रकार कई बार हुआ। अन्त में, स्वामीजी ने यह सोच कर इस संकल्प को पूरी तरह त्याग दिया कि जब ऐसा बार-बार हो रहा है तो दीक्षा लेने से अकल्याण ही होगा। अस्तु बाबाजी से ज्ञान लाभ में असफल मनोरथ होने पर भी बाबाजी तथा स्थानीय भक्तों के स्नेह एवं आग्रह के कारण एक माह और गाजीपुर रहकर स्वामीजी ने अप्रैल के प्रारंभ में वहाँ से प्रस्थान किया।

(२)

स्वामी विवेकानन्द के गाजीपुर प्रवास के इस काल का मूल्यांकन करने के पूर्व उनकी पवहारी बाबा के बारे में क्या धारणा थी, इसे जानने का प्रयत्न किया जाय। केशवचन्द्र सेन, विजयकृष्ण गोस्वामी आदि से लेकर तैलंग स्वामी, भास्करानन्द आदि तत्कालीन भारत के अनेक धार्मिक महात्माओं के साथ स्वामी विवेकानन्द का साक्षात्कार हुआ। पॉल डायसन, मैक्समूलर आदि पाश्चात्य मनीषियों के साथ भी उनकी मुलाकात हुई थी लेकिन पवहारी बाबा ही एक मात्र ऐसे महापुरुष थे जिन्हें उन्होंने गुरु के रूप में वरण करने का विचार किया था। उनसे ज्ञानार्जन में असफल होने पर भी स्वामीजी की पवहारी बाबा के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति कभी कम नहीं हुई थी। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि स्वामीजी के हृदय में श्री रामकृष्ण के बाद दूसरा स्थान पवहारी बाबा के लिए ही था।

पवहारी बाबा के देह-त्याग के बाद स्वामीजी ने उनके विषय में ब्रह्मवादिन पत्रिका में १८९९ ई० में एक सुन्दर प्रबन्ध लिखा था। उसके अन्त में स्वामीजी ने लिखा : "वर्तमान लेखक इस परलोकगत महात्मा के प्रति परम ऋणी है। इस लेखक ने जिन श्रेष्ठतम आचार्यों से प्रेम किया है तथा जिनकी सेवा की है, उनमें से वे एक हैं। उनकी पवित्र स्मृति में मैं ये पंक्तियाँ, टूटी फूटी चाहे जैसी भी हों भक्तिपूर्ण अन्तःकरण से समर्पित करता हूँ।[4]"

वे कौन-से गुण थे, कौन-सी विशेषताएँ थीं जिनके कारण स्वामीजी पवहारी बाबा से इतने प्रभावित हुए थे ? ऊपर उल्लेखित प्रबन्ध के प्रारंभ में एक दीर्घ अवतरणिका के रूप में स्वामीजी कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्तों एवं आध्यात्मिक जगत के कतिपय नियमों को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं : "जिस परिमाण में मनुष्य इन्द्रिय राज्य छोड़कर उच्चभाव भूमि पर अवस्थान करने की क्षमता प्राप्त कर लेता है, जिस परिमाण में वह विशुद्ध चिन्तन-रूपी वायु अपने भीतर खींचने में समर्थ हो जाता है तथा जितने अधिक समय तक वह उच्च अवस्था में रह सकता है, उसी परिमाण में वह अपनी उन्नति कर सकता है। संसार में यह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि सुसंस्कृत उन्नत व्यक्ति अपने जीवन-निर्वाह के लिए निनान्त आवश्यक चीजों के अतिरिक्त तथाकथित ऐश-आराम में अपना समय गँवाना विलकुल पसन्द नहीं करते, और जैसे जैसे वे उन्नत होते जाते हैं, वैसे-वैसे आवश्यक कर्म करने में भी उनका उत्साह कम होता जाता दिखाई देता है।[5]" निश्चय ही पवहारी बाबा ऐसे ही एक महापुरुष थे जिन्होंने उच्चतर भावराज्य में विचरण करने के लिए जीवन धारण के लिए आवश्यक वस्तुओं को भी अत्यन्त कम कर लिया था।

स्वामीजी आगे लिखते हैं : "हममें से अधिकांश लोग चिन्तनशीलता के साथ कार्य का सामंजस्य नहीं रख पाते। केवल थोड़े ही महानुभाव ऐसा कर सकते हैं। देखने में बहुधा यही आता है कि हममें से अधिकांश व्यक्ति जब गंम्भीर मनन करने लग जाते हैं तो वे अपनी कार्यक्षमता खो बैठते है और इसी प्रकार जो लोग अधिक कार्य में व्यस्त

हो जाते हैं, वे अपनी गंभीर चिन्तन-शक्ति गँवा बैठते हैं।[6]" स्वामीजी के अनुसार इन दोनों का गीतोक्त समन्वय ही पूर्ण आदर्श है। "परन्तु बहुत कमलोग इस आदर्श को प्राप्त करते हैं। अतएव वास्तविकता जो भी हो हमें उसे ग्रहण करना ही होगा तथा इतने से ही सन्तुष्ट होना होगा कि हम विभिन्न व्यक्तियों में प्रकाशित पूर्णता के भिन्न-भिन्न पहलुओं को एकत्र ग्रथित कर लें।"

"धर्म के क्षेत्र में चार प्रकार के लोग होते हैं : गंभीर चिन्तनशील (ज्ञानयोगी) दूसरों की सहायता के लिए प्रबल कर्मशील (कर्मयोगी) साहस के साथ आत्मानुभूति प्राप्त कर लेने में अग्रसर (राजयोगी) तथा शान्त एवं विनम्र (भक्ति-योगी)। प्रस्तुत लेख में हम जिनका चरित्र-वर्णन करेंगे वे एक असाधारण विनय-सम्पन्न तथा श्रेष्ठ आत्मज्ञानी व्यक्ति थे।[7]" स्वामीजी के अनुसार वे योग, भक्ति एवं विनय की प्रतिमा थे। उनकी बोली अत्यन्त मधुर थी, लेकिन बात करते-करते मानो उनके मुख से अग्नि के समान तेजस्वी वाणी निकलती थी।[8]" उनके विनय तथा सरलता में किसी प्रकार का कष्ट, यन्त्रणा अथवा आत्मग्लानि नहीं थी। वह पूर्ण रीति से स्वाभाविक थी।[9]" "वे प्रत्यक्ष रूप से उपदेश नहीं दे सकते थे क्योंकि ऐसा करना तो मानो आचार्य-पद ग्रहण करना हो जाता तथा स्वयं को मानो दूसरों की अपेक्षा उच्चतर आसन पर आरूढ़ कर लेने के सदृश हो जाता।[10]' एक प्रश्न के उत्तर में बाबाजी ने कहा था "तुम्हारी क्या ऐसी धारणा है कि केवल स्थूल शरीर द्वारा ही दूसरों की सहायता हो सकती है ? क्या शरीर के क्रियाशील हुए विना केवल मन ही दूसरे मनों की सहायता नहीं कर सकता ?"[11]

कर्म रहस्य के विषय में पवहारी बाबा के एक गुण विशेष एवं उपदेश से स्वामीजी विशेष रूप से प्रभावित हुए थे, एवं उसे उन्होंने संदेश का एक अंग भी बनाया था। पवहारी बाबा जिस समय जो काम हाथ में लेते, वह चाहे जितना ही तुच्छ क्यों न हो, उसमें पूर्णतया मग्न हो जाते थे। उनका सिद्धान्त था कि "जत साधन तत सिद्धि" अर्थात् ध्येय-प्राप्ति के साधनों एवं उपायों से वैसे ही प्रेम रखना चाहिए तथा उनपर वैसे ही ध्यान देना चाहिए मानो वे स्वयं ही ध्येय हों।

उनके लिए संसार के सभी प्राणी प्रभु-या प्रभु के दूत थे, चाहे वह उनके घर में चोरी करने की नीयत से घुसा चोर हो या उनको डँसनेवाला जहरीला साँप। सब प्रकार के शारीरिक दुःख उनके लिए अपने प्रियतम के पास से आये हुए दूत के समान ही थे। यद्यपि इन दुःखों से कभी-कभी उन्हें अत्यन्त पीड़ा भी होती थी तथापि यदि कोई दूसरा व्यक्ति इन दुःखों को किसी दूसरे नाम से सम्बोधित करता था, तो इन्हें बहुत ही असह्य हो जाता था।

पवहारी बाबा के व्यक्तित्व में अभिव्यक्त हुए ये गुण एवं उनके उपर्युक्त कथनों का स्वामी विवेकानन्द पर गहरा प्रभाव पड़ा था। उनके सन्देश के विकास में उनकी निश्चित भूमिका भी स्वामीजी के उपदेशों के अवलोकन से अनुमित की जा सकती है।

उक्त लेख में अन्यान्य बातों के अलावा स्वामी जी ने विभिन्न स्रोतों से प्राप्त जानकारी के आधार पर पवहारी बाबा की जीवनी एवं प्रमुख घटनाओं का वर्णन किया है।

पवहारी बाबा का स्वामीजी के प्रति क्या दृष्टिकोण था ? बाबाजी के कमरे में श्री रामकृष्ण का एक चित्र रहता था तथा वे श्री रामकृष्ण को भगवदावतार मानते थे। इनकी श्री रामकृष्ण के अवतारत्व की इस मान्यता का विशेष मूल्य है क्योंकि पवहारी बाबा जैसे उच्चकोटि के योगी

एवं सिद्ध महापुरुष ही श्री रामकृष्ण की महानता का सही मूल्यांकन कर सकते हैं। यह भी संभव है कि अपनी सहज विनम्रता के कारण बाबाजी ने स्वामी विवेकानन्द को एक जिज्ञासु साधक के बदले अवतार के विशेष पार्षद के रूप में देखा हो एवं स्वामीजी को ज्ञान प्रदान करने में संकोच का अनुभव किया हो। यही नहीं, ३ मार्च, १८९० के के पत्र में तो स्वामीजी लिखते हैं : "पहले मैं उनके द्वार पर भिखारी था, पर अब वही मुझसे कुछ सीखना चाहते हैं।" स्वामीजी की अस्वस्थता के समय उनके पास आदमी भेजकर खोज-खबर लेना उनके स्वामीजी के प्रति स्नेह का द्योतक है।

(३)

स्वामी विवेकानन्द-पवहारी बाबा प्रसंग के विषय में कुछ प्रश्न स्वाभाविक रूप से हमारे मन में उठते हैं। युगावतार श्री रामकृष्ण के प्रियतम पार्षद होते हुए स्वामीजी पवहारी बाबा के सामने हाथ पसारने क्यों गये थे ? श्री रामकृष्ण की कृपा से उन्हें अद्वैत ज्ञान की चरम अनुभूति निर्विकल्प समाधि की प्राप्ति तो हुई थी ही योगज अष्टादि सिद्धियाँ भी प्राप्त हुई थीं तो फिर किस कमी की पूर्ति के लिए स्वामीजी पवहारी बाबा का शिष्यत्व ग्रहण करने को प्रस्तुत हुए थे। और, फिर श्री रामकृष्ण ने बार-बार दर्शन देकर उनके इस मनोरथ को क्यों पूरा नहीं होने दिया ? इन प्रश्नों का उत्तर स्वयं स्वामीजी के पत्रों एवं वार्त्तालापों से प्राप्त होता है। अपने शिष्य श्री शरत्-चन्द्र चक्रवर्ती से वार्त्तालाप करते समय एक बार उन्होंने कहा था : "एक दिन मन में आया श्री रामकृष्ण देव के पास इतने दिन रहकर भी मैंने इस रुग्ण शरीर को दृढ़ बनाने का कोई उपाय तो नहीं पाया। सुना है पवहारी बाबा हठयोग जानते हैं। उनसे हठयोग की क्रिया सीखकर देह को दृढ़ बनाने के लिए अब कुछ दिन साधना करूँगा।[12] अपने एक पत्र में उन्होंने लिखा था : मेरा मूल मन्त्र है कि जहाँ जो कुछ भी अच्छा मिले सीखना चाहिए। इसके कारण वराहनगर में मेरे बहुत से गुरुभाई सोचते हैं कि मेरी गुरुभक्ति कम हो जायगी। इन्हें मैं पागलों तथा कट्टर-पंथियों के विचार समझता हूँ क्योंकि जितने गुरु हैं, वे सब एक उसी जगद्गुरु के अंश तथा आत्म-स्वरूप हैं।[13]

स्वामी विवेकानन्द की जीवनी से परिचित लोग यह जानते हैं कि निरन्तर निर्विकल्प समाधि में डूबे रहने की तीव्र अभिलाषा स्वामीजी के हृदय में विद्यमान थी। काशीपुर में श्री रामकृष्ण से इसी वस्तु के लिए स्वामीजी ने याचना की थी, एवं यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि पवहारी बाबा के निवृत्तिपरक जीवन में अपने ईप्सित जीवनादर्श को चरितार्थ होते देख उनके मन में एक बार फिर उस अवस्था की प्राप्ति की आकांक्षा जगी होगी, उस रत्नभंडार को पुनः प्राप्त करने के लिए उनका मन पुनः लालायित हो गया जिसकी चाबी श्री रामकृष्ण के पास सुरक्षित थी। श्री रामकृष्ण का पुनः पुनः आविर्भाव इस बात का द्योतक था कि जबतक स्वामीजी माँ जगदम्बा का कार्य पूरा नहीं कर लेते तब तक चिरसमाधि की विश्रान्ति उनको प्राप्त नहीं हो सकेगी। एक बात और है, श्री रामकृष्ण एक व्यक्ति-विशेष तो हैं नहीं, वे तो आध्यात्मिक भावों के घनीभूत विग्रह हैं। उनके आविर्भाव का यह तात्विक अर्थ भी है कि उनके द्वारा प्रतिपादित नवीन आध्यात्मिक युगादर्श पवहारी बाबा के जीवन में प्रतिफलित पुरातन भारतीय आदर्श विशेष से मेल नहीं खाता। श्री रामकृष्ण हठयोग के पक्षपाती नहीं थे। हठयोग साधक के देहात्मबोध को प्रबल बनाकर शरीरासक्ति में ही आबद्ध कर देता है। अतः यह कैसे सम्भव है कि

इस सिद्धान्त के प्रचारक श्री रामकृष्ण के शिष्य होकर स्वामीजी पवहारी बाबा से हठयोग सीखते ?

द्वितीयत: पवहारी बाबा का जीवनादर्श एकांगी था जब कि श्री रामकृष्ण का भाव अधिक व्यापक, पूर्णतर एवं बहुमुखी है। श्री रामकृष्ण कहा करते थे, मैं सभी का आस्वादन करना चाहता हूँ, एकांगी नहीं होना चाहता। पवहारी बाबा की अपूर्णता का संकेत स्वय स्वामीजी अपने ३ मार्च के पत्र में देते हुए लिखते हैं। ऐसा लगता है कि यह सन्त अभी पूर्ण सिद्ध नहीं हुए हैं, क्योंकि ये बहुत से कर्म, व्रत, आचार इत्यादि में लिप्त हैं और गुप्त भाव तो बहुत ही अधिक है। समुद्र पूर्ण होने पर कभी वेलाबद्ध नहीं रह सकता, यह निश्चित है।[14] यह भी संभव है कि ज्ञान, भक्ति, योग एवं कर्म, इन चारों के पूर्ण एवं समन्वित अवतार श्री रामकृष्ण के योग्य शिष्य स्वामीजी को देखकर स्वयं पवहारी बाबा को अपने जीवन की अपूर्णता का भाव हुआ हो और उसकी पूर्ति के लिए वे स्वयं स्वामीजी के सामने याचक बने हों। श्री रामकृष्ण ने अपने गुरुओं की अपूर्णता को दूर किया था. तो यदि स्वामीजी ने पवहारी बाबा को पूर्णता प्राप्ति में सहायता प्रदान की हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? १३ मार्च १८९० के दिन या उसके पूर्व ही स्वामीजी इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके थे कि पवहारी बाबा से दीक्षा लेना सम्भव नहीं है, फिर भी वे पूरे एक महीने बाबाजी के स्नेहवश गाजीपुर रुके रहे। इस अवधि में बाबाजी ने स्वामीजी के माध्यम से श्री रामकृष्ण की अनन्त भावराशि से कुछ अमूल्य रत्न अवश्य संग्रह किये होंगे। इतना सब होते हुए भी यह तो स्वीकार करना ही होगा कि इन दो अद्वितीय महापुरुषों का परस्पर सम्बन्ध अत्यन्त मधुर, गहरी सम्वेदनापूर्ण एवं एक दूसरे के प्रति आंतरिक श्रद्धा एवं आदर के भाव से पूर्ण था।

४

इस प्रसंग का उपसंहार अत्यन्त मर्मस्पर्शी है, जिसके माध्यम से श्री रामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द का आलौकिक स्नेह-सम्बन्ध बहुत स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हुआ है। अपने ३ मार्च १८९० के पत्र में 'पुनश्च' करके लिखे गये अनुलेख में स्वामीजी लिखते हैं : "अतएव, मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि श्री रामकृष्ण की बराबरी का दूसरा कोई नहीं। वैसी अपूर्व सिद्धि, वैसी अपूर्व, अकारण दया, जन्म-मरण से जकड़े हुए जीव के लिए वैसी प्रगाढ़ सहानुभूति इस संसार में और कहाँ ?" या तो वे अपने कथनानुसार अवतार हैं। अथवा वेदान्त दर्शन में जिसे नित्य सिद्ध महापुरुष "लोक-हिताय भुक्तोऽपि शरीर ग्रहण कारी" कहा गया है, वे हैं, निश्चित, निश्चित इति मे मतिः।... अपने जीवनकाल में उन्होंने मेरी कोई भी प्रार्थना नहीं ठुकरायी, मेरे लाखों अपराध क्षमा किए। मेरे माता-पिता में भी मेरे लिए इतना प्रेम न था। इसमें कोई कविजन सुलभ अतिशयोक्ति नहीं है।[15]"

इसी गाजीपुर प्रसंग एवं श्री रामकृष्ण के बारंबार दर्शन का स्मरण कर स्वामीजी ने "गाता हूँ गीत मैं तुम्हें ही सुनाने को" शीर्षक कविता भी लिखी है। भावावस्था में लिखी गई स्वामीजी की कविताओं में यह अन्यतम एवं अत्यन्त महत्व-पूर्ण है। इस कविता में स्वामीजी लिखते हैं :

"बाल केलि करता हूँ तुमसे मैं,
और क्रोध करके देव
तुमसे किनारा कर जाना कभी चाहता हूँ,
किन्तु निशा काल में
शय्या के शिरोभाग में
देखता हूँ तुमको मैं खड़े हुए
चुप चाप, आँखें छलछलायी, हुई
हेरते हो मेरे तुम मुख की ओर।

उसी समय बदल जाता भाव मेरा,
पैरों पड़ता हूँ
पर क्षमा नहीं माँगता;
तुम नहीं करते हो रोष।
पुत्र हूँ तुम्हारा, कहो,
और कोई कैसे इस प्रगल्भता को
सहन कर सकता है ?
प्रभु हो तुम मेरे
तुम प्राण सखा-मेरे हो।
कभी देखता हूँ
तुम मैं हो, मैं तुम हूँ[16]"

इसी में स्वामीजी श्री रामकृष्ण के प्रति अपने समर्पण को पुनः दुहराते हैं :

"·····दया के सागर तुम
दास हूँ तुम्हारा जन्म-जन्म का मैं,
··· भक्तिपूर्वक सुनता यह दास
है तत्पर सदा ही
पूर्ण करने को तुम्हारा काम।[17]"

कविता की इन पंक्तियों में श्री रामकृष्ण एवं स्वामीजी का घनिष्ठ प्रेम-सम्बन्ध अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से व्यक्त हुआ है। श्री रामकृष्ण पिता हैं, स्वामीजी पुत्र; अथवा वे स्वामी हैं, व स्वामीजी दास, और एक अवस्था में स्वामी जी श्री रामकृष्ण के साथ अपना एकत्व भी अनुभव करते हैं।

लेकिन इस घनिष्ठ सम्बन्ध की अनुभूति के अतिरिक्त और भी किसी गूढ़ सत्य का रहस्योद्घाटन गाजीपुर प्रसंग के पटाक्षेप के रूप में हुआ था। स्वामीजी के बंगला जीवनीकार स्वामी गंभीरानन्द जी का भी मत है कि श्री रामकृष्ण के आविर्भाव के साथ और भी कुछ हुआ था, जिसे स्वामीजी ने कभी प्रकट नहीं किया।[18] श्री रामकृष्ण अपने अन्तरंग शिष्यों से तीन बातें भली प्रकार जान लेने को कहा करते थे : मैं (श्री रामकृष्ण) कौन हूँ, तुम (शिष्य) कौन हो ? और इन दोनों का सम्बन्ध क्या है ? गाजीपुर में बार-बार श्री रामकृष्ण के दर्शन पाकर स्वामीजी को उनके साथ अपने नित्य अभिन्न सम्बन्ध की अनुभूति के साथ साथ उनके तथा अपने स्वरूप की भी स्पष्ट उपलब्धियाँ हुई थीं। श्री रामकृष्ण के दिव्यत्व की उपलब्धि के बिना उनसे पिता-पुत्र अथवा स्वामी-दास का सम्बन्ध एक अर्थहीन लौकिक सम्बन्ध मात्र होकर रह जाता। उपर्युक्त कविता के अनेक अंश इस बात का संकेत देते हैं कि स्वामीजी ने श्री रामकृष्ण का अन्तर्यामी परमात्मा के रूप में साक्षात्कार किया था।

"रूप तुम्हारा ही सब घटों में विराजमान"

या फिर उन्होंने श्री रामकृष्ण का विश्व रूप ही तो नहीं देखा ?

सिन्धुनाद जैसा तुम्हारा हुँकार है
सूर्य और चन्द्र में हैं वचन तुम्हारे देव,
मृदुमन्द पवन तुम्हारा आलाप है,···[19]

और उसके बाद स्वामीजी सूर्य-चन्द्र-युक्त विराट सृष्टि, देव, यक्ष, मानवादि जीवगण, मन बुद्धि आदि आन्तर जगत का वर्णन कर उस अवस्था की कल्पना करते हैं, जहाँ इन सबके विलीन होने पर केवल श्री रामकृष्ण का सुन्दर अनाहत नाद रह जाता है। इन पंक्तियों को पढ़कर तो यह प्रतीत होता है कि श्री रामकृष्ण ने स्वामीजी को दिव्य चक्षु प्रदान कर अपने इन्द्रियातीत, जगदातीत एवं अन्तर्यामी दोनों रूपों का प्रत्यक्ष अनुभव प्रदान किया था।

और अन्त में, स्वामीजी अद्वैतानुभूति की अभिव्यक्ति से मुखर हो उठते हैं :

"मैं ही विद्यमान हूँ
प्रलय के समय में
अनन्त ब्रह्माण्ड ग्रास करके जब

ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता मिट जाते हैं
" मैं विकसित फिर होता हूँ।...."
" आदि कवि मैं ही हूँ
मेरी ही शक्ति के रचना-कौशल में हैं,
जड़ और जीव सारे......।[२०]"

श्री रामकृष्ण की कृपा से स्वामीजी को ये गहरी अनुभूतियाँ हुई थीं, यही कारण था कि इस घटना के बाद स्वामीजी के मन में अपने जीवनोद्देश्य एवं श्री रामकृष्ण के स्वरूप के विषय में कभी कोई संशय नहीं उठा। अतः वे तीन मार्च के अपने पत्र में निश्चयपूर्वक लिख सके थे : "अब किसी बड़े आदमी के पास नहीं जाऊँगा।" कमलाकान्त के गीत की कड़ी दुहराते हुए वे मानो कहना चाहते हैं, कि पारसमणि तो उनके पास ही है, इधर-उधर भटकने से क्या लाभ ? और, इस चरम अनुभूति एवं जीवनपर्यन्त के लिए उद्देश्य की स्थिरता का श्रेय पवहारी बाबा के साथ उनके संपर्क को ही दिया जाना चाहिए जिसने श्री रामकृष्ण को, अपने प्रियतम पार्षद पर कृपा करने को बाध्य किया।

खेद है कि जिस भवन में स्वामीजी को ये उच्चतम अनुभूतियाँ हुईं तथा संभवतः जिस वृक्ष के नीचे बैठकर उन्होंने इस अपूर्व भावव्यंजक कविता की रचना की, वे आज भी उपेक्षित, असंरक्षित पड़े हुए हैं।

सन्दर्भ सूची

(१) विवेकानन्द साहित्य, प्रथम खण्ड, अद्वैत आश्रम कलकत्ता १०६३, पृष्ठ ३५४
(२) वही, पृष्ठ ३५४
(३) वही, पृष्ठ ३५५
(४) पवहारी बाबा द्वितीय संस्करण, श्री रामकृष्ण आश्रम, नागपुर, १९५०, पृष्ठ २८
(५) वही, पृष्ठ ४
(६) वही, पृष्ठ ८, ९
(७) वही, पृष्ठ ९-११
(८) विवेकानन्द साहित्य, प्रथम खण्ड, अद्वैत आश्रम, कलकत्ता १९६३, पृष्ठ ३५५
(९) पवहारी बाबा, द्वितीय संस्करण श्री रामकृष्ण, आश्रम नागपुर, १९५०, पृष्ठ २६
(१०) वही, पृष्ठ २६
(११) वही, पृष्ठ २३
(१२) विवेकानन्द साहित्य, षष्ठ खण्ड, अद्वैत आश्रम, कलकत्ता, १९७३, पृष्ठ ३११
(१३) विवेकानन्द साहित्य : प्रथम खण्ड, अद्वैत आश्रम, कलकत्ता १९६४, पृष्ठ ३६७
(१४) वही, पृष्ठ ३६४
(१५) वही पृष्ठ ३६५-६६
(१६) कवितावली, श्री रामकृष्ण आश्रम. नागपुर, १९४९ पृष्ठ ८-९
(१७) वही, पृष्ठ ८,१२
(१८) युगनायक विवेकानन्द (बंगाली) प्रथल खण्ड, प्रथम संस्करण, उद्बोधन कार्यालय, कलकत्ता, पृष्ठ २६१
(१९) कवितावली, पृष्ठ ८ ९
(२०) वही, पृष्ठ १२,१४